अध्याय – 1

कथा साहित्य एवं समाज के विभिन्न वर्गो का परिचय

कथा साहित्य का परिचय

उपन्यास और कहानी से संबंधित साहित्य को सामुहिक रूप में कथा-साहित्य कहा जाता है। ये दोनों गद्य साहित्य की लोकप्रिय एवं प्रचलित विधाएँ हैं और इनका विकास आधुनिक काल में हुआ है। ये विधाएं 19$^{वी}$ शदी के उत्तरार्द्ध में पाश्चात्य सभ्यता, शिक्षा तथा साहित्य के प्रचार प्रसार ने और स्वाधीनता के आंदोलन के साथ ही सामाजिक, धार्मिक आंदोलन के फलस्वरुप हिंदी साहित्य में आनेको परिवर्तन हुए। भारतेन्तु युग में हिन्दी नये रूप से चलने लगी, ब्रजभाषा का जगह खड़ी बोली ने ले लिया था, पद्य के साथ-साथ गद्य रचनाओं ने भी तेजी से प्रगति की, जिसके कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के आधुनिक काल को 'गद्य काल' की संज्ञा दी है। इस काल में साहित्य में जितनी अनेकरूपता का विकास हुआ है उतना विकास किसी युग में नहीं हुआ था। क्योंकि इससे पहले 'पद्य' को अधिक महत्वता दी जाती थी। आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल तक का समस्त हिन्दी साहित्य-पद्य साहित्य में ही रचित है। आधुनिक काल में प्रबल विचारों की अभिव्यक्ति के लिए गद्य साहित्य का आश्रय तो लिया, उसके साथ- साथ ही साहित्य के विविध रूपों का भी विकास हुआ। जिसकें अंतर्गत कहानी, उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, आलोचना, आत्मकथा, संस्मरण,आत्मकथा, रेखाचित्र आदि उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी कहानी और उपन्यास का विकास आधुनिक काल में ही हुआ, किन्तु दोनों के विकास की गति और रीति दोनों ही अलग है, इसलिए दोनों के विकास को भिन्न रूप से समझना ही सरल और साधारण है। अत: हम पहले हिन्दी उपन्यास का और उसके बाद कहानी का परिचय विस्तार से करेंगें।

उपन्यास साहित्य का परिचय

उपन्यास जगत की सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध विधा है। तथा साहित्य का आधुनिक रूप है। प्रत्येक युग में कथा कहने और सुनने की प्रवृत्ति प्रचलित रही है। आधुनिक मनुष्य दुःख-दर्द जितना उपन्यास में परिलक्षित हुआ हैं उतना और कहीं नहीं। हम अपने स्थिति से तो परिचित होते हैं किंतु उपन्यास के द्वारा हम समाज देश और विश्व से भी परिचित होते हैं। अंग्रेजी के कवि पोप ने लिखा है कि – "मनुष्य की प्रॉपर study of man is man और मनुष्य की सही पहचान उपन्यास में ही उभर आयी हैं, अतः आज के मनुष्य को समझने के लिए आज के उपन्यासों का अध्ययन आवश्यक हो गया है। मनुष्य की एक मूलभूत वृति है चेतना का विस्तार और उसके द्वारा वह लोकोत्तर आनन्द तक की उपलब्धि करता है। हम अपने माहौल से तो परिचित होते हैं परंतु उपन्यास के द्वारा हम समाज, देश और विश्व के माहौल को आत्मसात करते हैं। उपन्यास जीवन की उपासना है। इसमें हम जीवन के साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं। एक सफल उपन्यास को जीवन का भाष्य भी कहा जा सकता है। उपन्यास दौड़ते हुए जीवन को पकड़ता है। वह सिनेमाटोग्राफ की भांति हमारे सामने आता है। वह गत जीवन को देखने वाली एक आँख बन जाता है।"[1] डॉ. त्रिभुवन सिंह के अनुसार - " उपन्यास गद्य साहित्य का वह सामर्थ रूप है जिसमें प्रबन्ध काव्य का-सा सुसंठित वस्तु विन्यास, महाकाव्य की-सी व्यापकता, गीतों की-सी मार्मिकता, नाटकों-सा प्रभाव, गांभीर्य तथा छोटी कहानी की-सी कलात्मकता एक साथ मिल जाएगी। श्रृंखलाबद्ध कथानक द्वारा सरल तथा गूढ़ मानव-चरित्रों एवं मानसिक संघर्षों से युक्त उसके स्वभावों एवं मन की महती शक्तियों का पूर्ण जीवित एवं यथार्थ चित्र कल्पना के द्वारा जिस साहित्य रूप में प्रस्तुत किया जाता है, उसे उपन्यास कहते हैं।"[2] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार – " उपन्यास मनोरंजन के लिए लिखी जाने वाली कविताओं की ही नहीं नाटकों की भी कमर तोड़ दी है, क्योंकि पांच मील दौड़कर रंगशाला में जाने की अपेक्षा पांच सौ मील से पुस्तक मंगा लेना आज के जमाने में सरल है। किसी लेखक ने ठीक ही कहा है कि इस

युग में उपन्यास शिष्टाचार का सम्प्रदाय, बहस का विषय, इतिहास का चित्र और पाकेट का थिएटर हो गया है। इसने कल्पना-प्रसूत साहित्य को अन्य किसी सहित्यांग की अपेक्षा अधिक नजदीक ला दिया है। वह साहित्य मशीन की विजय ध्वजा है।"[3]

प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यास

प्रेमचंद पूर्व युग में प्रमुख उपन्यास कार 'श्री किशोरी लाल गोस्वामी' ने अपने उपन्यासों को सामाजिक, ऐतिहासिक तथा घटनात्मक तिलिस्मी ऐयारी, इन तीन वर्गों में विभक्त है। 'सामाजिक उपन्यास' इस प्रकार हैं। पं. श्रद्धाराम द्वारा 'भगवती' 1877 में लिखा गया उन्होंने भाग्यवती हिंदी में लिखा जिसे पढ़ने से भारत की स्त्रियों का गृहस्थ जीवन की शिक्षा मिल सके। लाला श्रीनिवास दास का 'परीक्षा गुरु' हिंदी का पहला मौलिक उपन्यास हैं। पं.बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' 1886, ये उपन्यास विद्यार्थियों को चारित्रिक शिक्षा देने के लिए लिखा गया है। 'सौ अजान एक सुजान' 1892, यह उपन्यास युवको के लिए लिखा गया है। ठाकुर जगमोहन सिंह द्वारा लिखा गया हैं, 'श्यामा स्वप्न' 1888, यह ब्राह्मण कुमारी और श्याम सुंदर क्षत्रिय कुमार की काल्पनिक कथा चित्रित है इसमें दु:ख, प्रेम, मिलन की कथा वर्णित है। श्री राधाकृष्ण दास द्वारा लिखित 'निस्सहाय हिन्दू' 1890 गोवध-निवारण की भावना से प्रोत्साहित होकर चित्रित किया गया है। पं.लज्जाराम मेहता ने 'धूर्त रसिकलाल' 1889, यह चरित्र-प्रधान उपन्यास माना जाता है। 'स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी' 1899, इस उपन्यास में दो सगी बहनों उल्लेख किया गया है रमा अंग्रेजी शिक्षा से प्रभावित है वो स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है और लक्ष्मी भारतीय संस्कृति के अनुसार पतिव्रता स्त्री की तरह जीवन बिताना चाहती हैं। 'आदर्श दम्पत्ति'1904, 'बिगड़े का सुधार अथवा 'सती सुखदेवी' 1907 तथा 'आदर्श हिंदू' 1914 आदि। श्री किशोरीलाल गोस्वामी प्रेमचंद पूर्व युग के लोकप्रिय उपन्यासकार है यह निम्बार्क संप्रदाय अनुयायी थे। उनकी प्रसिद्ध रचनाएं इस प्रकार हैं 'त्रिवेणी वा सौभाग्यश्रेणी' 1890, 'लीलावती वा आदर्शसती' 1901, 'स्वर्गीयकुसुम वा कुसुमकुमारी' 1901, यह उपन्यास वेश्या जीवन मे व्याप्त

आंतरिक घृणा का वर्णन किया गया है। 'राजकुमारी' 1902, 'चपला वा नव्यसमाज' 1903-04, 'पुनर्जन्म वा सौतिया दाह' 1907, 'माधवीमाधव वा मदन मोहिनी' 1909-10, 'अगूँठी का नगीना'1918 इस में मदनमोहन और लक्ष्मी की मर्यादित प्रेम कहानी को दिखाया गया है। इसके अलावा 'पणयिनी परिणय', 'सुख शर्वरी', 'प्रेममयी', 'चन्द्रावती वा कुलटा कुतूहल', 'चन्द्रिका वा जड़ाऊ चम्पाकली', 'तरुण तपस्विनी या कुटिर वासिनी', 'इंदुमती वा वनविहंगिनी' तथा लावण्यमय आदि उनके प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है। भुवनेश्वर मिश्र के चर्चित उपन्यास इस प्रकार हैं। 'घराउ घटना'1894, 'गुलेनार' 1907 , इस के अंतर्गत थियेट्रिकल कम्पनी में काम करने वाली वेश्या पर आधारित हैं। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय द्वारा लिखित उपन्यास 'ठेठ हिंदी का ठाट' या 'देवबाला' 1899, 'अधखिला फुल' 1907 , आदि सभी सामाजिक उपन्यास हैं।

प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यास इस युग मे इतिहास उपन्यास कम देखने को मिलते हैं। इसमें 'श्री किशोरीलाल गोस्वामी' का 'तारा वा क्षात्रकुल कमलिनी', 'कनक कुसुम वा मस्तानी', सुल्तान रजिया बेगम वा रंगमहल में हलाहल', हृदयहरिणी वा आदर्श रमणी', 'लवंगलता वा आदर्श बाल', 'मल्लिका देवी वा बंगसरोजिनी', 'सोना और सुगंध व पन्नाबाई' गुलबहार आदि।

जयराम गुप्त द्वार रचित इतिहासिक उपन्यास 'कश्मीरी पतन' 'रंग में भंग' 'मायारानी', 'नवाबी पारिस्तान वा वाजिद अली शाह', 'कलावती', 'मल्का चाँदबीबी' आदि इनके ऐतिहासिक उपन्यास है गंगा प्रसाद गुप्त का 'नूरजहाँ', 'वीर पत्नी', 'कुमार सिंह सेनापति', 'हम्मीर' आदि श्री मथुरा प्रसाद शर्मा का 'नूरजहाँबेगम व 'जहाँगीर' प्रमुख है यह इतिहास से संबंधित हैं कल्पना के भाव बहुत कम है। बाबू ब्रजनंदन सहाय ने 'लालचीन' में तुर्की गुलामों के सरदार तुगलचीन तथा दक्षिण के शासक गयासुद्दीन संघर्ष को प्रस्तुत किया है। मिश्रबन्धुओं ने 'वीरमणि' उपन्यास में कान्यकुब्ज ब्राम्हणों का वर्णन किया है। प्रेमचंद पूर्व के जो ऐतिहासिक उपन्यास के संबंध में यह जान लेना बहुत जरूरी है कि यह सच्चे अर्थों में ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कहे जा सकते हैं इस विषय में डॉ.रामचन्द्र तिवारी जी लिखते हैं – "लेखकों की प्रवृत्ति इतिहास की ओर से हटकर

प्रणय-कथाओं, विलास-लीलाओं, रहस्यमय प्रसंगों तथा कुतूहलवर्ध्दक घटनाचक्रों की कल्पना में लीन हो जाती है। वह कल्पना से अधिक कार्य लेते हैं, ऐतिहासिक छान-बीन कम करते हैं। अतीत, उनकी मुक्त कल्पना की उड़ान के लिए सुविधा प्रस्तुत करता है और वे इतिहास की चिन्ता छोड़कर पाठकों के चित्त का रंजन करनेवाली कथाधारा में बह जाते हैं। इसलिए इस युग में उत्तम कोटि के ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम लिखे गये।"[4]

घटनात्मक तथा तिलिस्मी में ऐयारी उपन्यास के प्रवर्तन बाबू देवकीनंदन खत्री है। पं रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "पहले मौलिक उपन्यास लेखक, जिनके उपन्यासों की सर्वसाधारण में धूम हुई, काशी के बाबू देवकीनंदन खत्री थे।"[5] इन सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' हैं। 'चन्द्रकान्ता संतति' इन्होंने चौबीस भाग में लिखा है। 'नरेंद्रमोहिनी', 'वीरेंद्रवीर', 'कुसुमकुमारी' भूतनाथ आदि उनके चर्चित उपन्यास हैं। "इन तिलिस्मी - ऐयारी उपन्यासों के मूल में राजकुमारों और राज-कुमारियों की प्रेम-कहानियाँ ही वर्णित हैं। घटनाओं के विकास-क्रम में विस्तृत वर्णन तथा नायकों, खलनायकों एवं उनके ऐयारों के कौशल विस्तार द्वारा कुतूहल उत्पन्न किया गया है।"[6] तथा घटनात्मक जासूसी उपन्यासकार श्री गोपाल राम गहमरी ने लगभग दोसौ जासूसी उपन्यास लिखे हैं। 'अद्भुत लाश', 'गुप्तचर', 'बेकसूर की फाँसी', 'सरकटी लाश', 'खूनी कौन', 'बेगुनाह का खून', 'जमुना का खून', 'डबल जासूस', 'मायाविनी', 'चक्करदार चोरी', 'जासूस की भूल', 'भयंकर चोरी', 'जादूगरनी मनोला', 'जासूस की ऐयारी', आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। " जासूसी उपन्यासों में प्राय: चोरी, डकैती, खून, ठगी आदि से संबंधित कोई भयंकर काण्ड घटित हो जाता है। जासूस उसके सुराग में लग जाता है। क्रमाश: उसी प्रकार के अन्य काण्ड घटित होते हैं। कथानक उलझ जाता है। अन्ततः जासूस की बुद्धि, धैर्य, साहस और कौशल से घटना का रहस्य उद्घाटित होता है। इसी टेकनीक के आधार पर ये उपन्यास लिखे जाते हैं।"[7]

प्रेमचंद युगीन हिंदी उपन्यास

हिंदी उपन्यासों के विकास की दृष्टि से प्रेमचंद युग श्रेष्ठ महत्व रखता है। इसका समयकाल 1918 ई.से 1936ई. तक का माना जाता है। प्रेमचंद जी आदर्शप्रियता, राष्ट्रीयभावना, भावावेग तथा नवजागरण जैसे प्रवृत्ति से प्रभावित थे। उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति को अपनाया, किंतु अपनी भारतीय संस्कृति के आदर्शों को ध्यान में रखते हुए। आदर्शवादी, उदारता तथा परोपकार उनके जीवन के प्रेरक तत्व कहे जाते हैं। जीवन के अंतिम समय में वे आदर्शवादी आस्था डगमगाने लगी और 'गोदान' तक आते-आते उनकी दृष्टि आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से यथार्थोन्मुख आदर्शवाद में परिवर्तित हो गया। प्रेमचंद के उपन्यास कला के विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है - " प्रेमचंद शताब्दियों से पददलित अपमानित उपेक्षित कृषिकों की आवाज थे। पर्दे में कैद, पद-पद पर लांछित और असहाय नारी-जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे, गरीबों और बेकारों के महत्व प्रचारक थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दु:ख सुख और सूझ-बूझ जानना चाहते हैं तो प्रेमचंद जी से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता। झोपड़ियों से लेकर महलों, खोमचों से लेकर बैंकों, गाँव से लेकर सभाओं तक आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रामाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता।"[8] प्रेमचंद युग के अंतिम चरण में लगभग सभी प्रवृत्तियों का आविर्भाव हो चुका था। उनके उपन्यासों में मानवीय चेतना, यथार्थ भाव, समाज कल्याण, यथार्थवादी विचार धारा तथा आध्यात्मिक और मानसिक संतुष्टि देने वाला, उनके उपन्यास में सभी कुछ मिल जाता है। प्रेमचंद जी के लोकप्रिय उपन्यास इस प्रकार है - 'सेवासदन', 'वरदान', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'निर्मला', 'प्रतिज्ञा', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'गोदान', 'मंगलसूत्र', (अधूरा) है। इन उपन्यासों के माध्यम से प्रेमचंद जी ने अपने युग की सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधि का समस्त छवि को प्रतिपादित किया है।

प्रेमचंद से प्रभावित होकर प्रेमचंद युग में अनेको प्रतिभाओं का आविर्भाव हुआ, जैसे विश्वंभर शर्मा कौशिक - 'माँ', और 'भिखरिणी', शिवपूजन सहाय - 'देहाती दुनिया', राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह - 'रामरहीम', 'परुष और नारी' , 'संस्कार', और 'चुम्बन और चाँटा', सियारामशरणगुप्त - 'गोद', जयशंकर प्रसाद - 'कंकाल', 'तितली', और 'इरावती', भगवतीप्रसाद वाजपेयी - 'प्रेमपथ', 'मीठी चुटकी', 'अनाथ पत्नी मुस्कान', 'त्यागमयी', 'प्रेमनिर्वाह', 'लालिमा', और 'पतिता की साधना', जैनेन्द्र कुमार - 'परख', 'सुनीता', 'कल्याणी', इनके अतिरिक्त जी.पी.श्रीवास्तव, निराला, सुदर्शन, वुन्दावनलाल वर्मा आदि उपन्यासकार इस युग में रहें हैं।

प्रेमचंदोत्तर युग

प्रेमचंद युग के पश्चात तमाम उपन्यासकारों और उनकी कुर्तियों को विविध प्रकार से विभक्त करने का प्रयास किया गया। इन उपन्यासों को सामाजिक, मनोवैज्ञानिक , ऐतिहासिक, आंचलिक, आदि उपन्यास समाहित है।

सामाजिक उपन्यास

भगवती चरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', यशपाल, अमृतलाल नागर आदि। सामाजिक विषयों को लेकर चलने वाले प्रमुख उपन्यासकार हैं उनके उपन्यासों में निहित सामाजिक संदर्भ प्रेमचंद जी से पृथक है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' में व्यक्तिवादी दृष्टि विशेष थी उन्होंने समाज से अधिक व्यक्ति को श्रेष्ठ समझा। यशपाल साम्यवादी विचारों के थे उन्होंने व्यक्तियों से ज्यादा समाज को महत्वता प्रदान की। अमृतलाल नागर ने समाज एवं व्यक्ति दोनों को महत्व दिया।

भगवती चरण वर्मा ने इस युग में चर्चित उपन्यास लिखें, 'चित्रलेखा','भूले बिसरे चित्र','पातन', 'तीन वर्ष', ' टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'रेखा', 'आखिरी दाँव', 'सीधी सच्ची बातें', 'सबहिं नचावत राम गोसाई', इत्यादि। इनका 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में वर्मा जी ने उत्तर भारत की सामाजिक तथा राजनीतिक स्थितियों को यथार्थ से प्रस्तुत किया है। इसमें। चार पीढियों की पूरी

कहानी बताई गयी हैं। इसमें आधुनिक भारत में मध्यवर्ग के विकास का लग-भग समूचा इतिहास उपस्थित है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का 'गिरती दीवारें' एक प्रसिद्ध रचना है, जिसमें निम्नमध्यवर्गीय युवक चेतन के माध्यम से आर्थिक परेशानी, व्यग्रता, सुख-दुःख, सफलता-असफलता, और संघर्ष को उजागर किया है। यशपाल का 'झूठ-सच' यह देश विभाजन के भीषण रक्तपात तथा अव्यवस्था की समस्या को उजागर किया है। इस उपन्यास के विषय में डॉ.प्रकाश चन्द गुप्त का मानना है कि - " इस में पट की विशालता है, सामाजिक यथार्थ का मार्मिक अंकन है, असंख्य पात्र हैं और आधुनिक जीवन की गहरी सूझ और अनुभूति हैं। बारह सौ पृष्ठों का यह उपन्यास अत्यन्त रोचक है और इस में अनेक जीवन्त चरित्र है।"[9] अमृतलाल नागर को लोकप्रिय बनाने वाले उपन्यास हैं 'बूँद और समुद्र' जो प्रतीकात्मक है, बूँद व्यक्ति का और समुद्र समाज का प्रतीक है। दूसरा 'अमृत और विष' हैं। नागर जी ने पात्रों के माध्यम से समाज, परिवार और रिश्तो को उल्लेखित किया है। समाज में व्याप्त नैतिक-अनैतिक, कुरीतियों को चित्रण के साथ ही मोहल्ले में रहने वालों के रहन-सहन, व्यवहार, आचरण, रीति-रिवाज को भी गहराई से उद्धटित किया है।

प्रेमचंदोत्तर युग में सामाजिक उपन्यासों में समाजवादी तथा सामाजिक यथार्थवादी दो उपधाराएँ रही हैं। समाजवादी उपन्यासों में चित्रित सामाजिक यथार्थ मार्क्सवादी विचारों के अनुसार होता है। डॉ.रामदरश के शब्दों में "समाजवादी उपन्यासों की एक निर्दिष्ट दृष्टि होती है। वह दृष्टि लेखक की अपनी निजी दृष्टि नहीं हो सकती, वह मार्क्सवादी होती है अर्थात् मार्क्स ने सामाजिक यथार्थ का जो विश्लेषण किया है, उसे ये उपन्यास छोड़ नहीं सकते। इस धारा के प्रवर्तक यशपाल हैं। इसमें डॉ.रांगेय राघव, का स्थान भी श्रेष्ठ है उनके करीबन तीस उपन्यास है जिसमें 'घरोंदा', 'सीधा-सादा रास्ता', 'विषाद मठ', 'कब तक पुकारूँ', मर्दों का टीला', इत्यादि रचनाएं हैं। रामेश्वर शुक्ल, का 'चढ़ती धूप', 'नयी इमारत', 'उल्का', इत्यादि प्रसिद्ध उपन्यासकारों ने अपना योगदान दिया है।

सामाजिक यथार्थ वादी उपन्यासों में समाज के जीवन की यथार्थता को दिखाते हुए साहित्यकार किसी विशेष जीवन दर्शन से जुड़े नहीं रहते हैं और सामाजिक उलझन के विवेचन के लिए किसी प्रभावी सिद्धांतों को धारण करते हैं इस युग में एक ओर भारतीय राजनीति में समाजवादी सिद्धांतों का आगमन हुआ और दूसरे तरफ प्रगतिशील विचारधारा साहित्य की जो लहर विश्व में स्थापित हो गई थी इससे उपन्यास साहित्य भी अछूता नहीं रह सका। इस धारा के प्रसिद्ध में भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' और अमृतलाल नागर इत्यादि साहित्यकार प्रमुख है।

आँचलिक उपन्यास

किसी पिछड़े हुए अज्ञात अंचल या किसी अनजान अपरिचित जाति के समस्त जीवन को संवेदना से चित्रित करना ही आँचलिक उपन्यास हैं। हिंदी में प्रथम आँचलिक उपन्यासकार 'नागार्जुन' है उन्होंने 'बलचनमा', 'दुखमोचन', 'वरुण के बेटे', 'बाबा बटेसरनाथ' इत्यादि प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

नागार्जुन ने मिथिला की सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्र रेखांकित किया है, उन्होंने अपने उपन्यासों में ग्रामीण जनता के शोषण तथा उनके संघर्ष को परिलक्षित किया है। लेखक ने मिथिला अंचल को प्रतिबिंबित करते हुए पूरे देश के ग्रामीण समाज की दयनीय स्थिति को उजागर करना है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' प्रकाशन के साथ ही आँचलिक विधा को तेजी से प्रसिद्ध मिली। रणवीर रांग्रा के अनुसार - "स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अब देश की एकाग्रता भंग हुई और देशोद्धार की अपेक्षा आत्मोद्धार की रौ चली, राष्ट्र की एकता को फोड़कर विविध प्रदेशों जातीय वर्गों और धर्मों संस्कृतियों की अनेकता प्रखर वेग से प्रस्फुटित हुई, तब हर किसी का ध्यान अपने प्रदेश, जाति-वर्ग-धर्म-संस्कृति के संरक्षण और विकास की ओर गया और इस दिशा में यथेष्ट प्रयत्न आरम्भ हुए आँचलिकता के पनपने के लिए यह स्थिति अत्यन्त अनुकूल थी और आँचलिक उपन्यास की धारा पूर्ण वेग में चली।"[10]

रांगेय राघव द्वारा रचित 'काका', 'कब तक पुकारूँ' , उदयशंकर भट्ट का 'लोक-परलोक', और 'सागर और लहरें', देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'रथ के पहिए', बलभद्र ठाकुर कृत 'आदित्यनाथ', 'मुक्तावली', ' नेपाल की बेटी', रामदरश मिश्र कृत 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', शिवप्रसाद 'रुद्र' कृत 'पानी के प्राचीर', शैलेश मटियानी कृत 'होल्दार', राही मासूम रज़ा कृत 'आधा गाँव', शिवप्रसाद सिंह कृत 'अलग अलग वैतरणी', 'शैलूष', श्रीलाल शुक्ल कृत 'राग दरबारी' विवेकी राय कृत 'बबूल', 'लोकऋण', 'पुरुषपुराण', 'श्वेतपत्र', 'सोना माटी', 'समर शेष है', शैलेश मटियानी बोरीवली से बोरी बन्दर तक', 'कबूतरखाना', 'हौलदार', 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई', 'चट्टिरसैल', 'चौथीमुट्ठी', 'दो बूँद जल' इत्यादि आँचलिक उपन्यास हैं।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में सर्वश्रेष्ठ जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, और डॉ. देवराज महत्वपूर्ण हैं। डॉ. देवराज उपाध्याय ने लिखा है "यदि किसी उपन्यास में घटना या अनुभूति के आत्मनिष्ठ रूप को अभिव्यक्ति पर आग्रह पायेंगे तो उसे मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहेंगे।"[11] जैनेंद्र ने हिंदी साहित्य में अनेक विषयों की अगुवाही की है, वह हिंदी साहित्य के प्रथम मनोवैज्ञानिक, व्यक्तिवादी उपन्यासकार रहे हैं। उपन्यासों में प्रख्यात सामाजिक नैतिक मापदंडों को परिवर्तन करने का श्रेय उनको जाता है। उन्होंने व्यक्ति के अमं का विसर्जन तथा आत्म पीड़ा को आत्मसात किया है। वह कहते हैं – "मेरे निकट यथार्थ का उतना मूल्य नहीं जितना कल्पना का है। वैसे भी यथार्थ तो कुछ नहीं। कल्पना का ही सब खेल है।"[12] उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि भाषा की व्यंजन है।

उनकी श्रेष्ठ रचनाएं हैं 'पारख', 'सुनीता', 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विवर्त', 'व्यतित', 'जयवर्धन', 'मुक्तिबोध', 'नयी दुनिया', 'अनाम स्वामी', दशार्क आदि प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपने साहित्य में आत्मकेंद्रित, अंतर्मुखी तथा स्त्री पुरुष के संबंधों तथा उपन्यासों में नारी मन की आत्मयातनाओं अंतर्मन तथा द्वंद परिलक्षित होता है। श्री इलाचन्द जोशी का 'लज्जा',

'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया', 'निर्वाचित', 'मुक्तिपथ', 'सुबह के भूले', 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी', 'ऋतुचक्र', 'भूत का भविष्य', 'कवि की प्रेयसी' आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास है। अपने उपन्यासों के विषय में लिखा है कि "मेरे सभी उपन्यासों का प्रथम उद्देश्य व्यक्ति के अहंभाव की एकांतिकता पर निर्मम प्रहार करने का है। कभी तृप्त न होनेवाले अहंभाव की अस्वाभाविक पूर्ति की चेष्टा में जब पुरुष को पग-पग असफलता मिलती है तो बौखला उठना है और उसे बौखलाहट की प्रतिक्रिया के फल स्वरूप वह आत्मविनाश की योजना में जूट जाता है।"[13]

अज्ञेय का 'शेखर : एक जीवनी', 'फ्लैश बैक' शैली में लिखा गयी उनकी पौढ रचना है। शेखर अहंवादी व्यक्ति है वो सामाजिक बंधनों की अवज्ञा करता है, उसके जीवन मे कई स्त्रियाँ आती है, उसकी बहन सरस्वती, मिस प्रतिभा, शांति, माणिका, शारदा, शीला तथा शशि आदि। शशि मृत्यु के पश्चात भी शेखर की प्रेणना बनी रहती है। तमाम आलोचनाओं के बाद भी एक शेष्ट रचना है। 'नदी के दीप', उपन्यास में मध्यवर्गीय जीवन का प्रतीक बनाकर नदी के द्वीप की कल्पना की गयी है, जिस प्रकार नदी का द्वीप अपनी धारा से कटा हुआ है उसी प्रकार मध्यवर्गीय जीवन भी विद्यमान जन प्रवाह से कटा हुआ है। अपने-अपने अजनबी' इस उपन्यास में मृत्यु से साक्षात्कार को विषय बनाया है। आदि उनकी महत्वपूर्ण रचनाएं हैं। इनके विषय में रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं - अज्ञेय के इस चिंतन में जीवन प्रियता के भारतीय आधार को ईसाई आस्था - विशेषतः यूरोप के 'पीएर क्ववीर' मठ की प्रेरणा–और जापान की 'जेन' पद्धति ने भी किसी सीमा तक समृद्धि किया है।"[14] डॉ. देवराज के प्रसिद्ध उपन्यास इस प्रकार है 'पथ की खोज', 'बाहर-भीतर', 'रोड़े और पत्थर', 'अजय की डायरी' तथा 'मैं वे और आप', इत्यादि इनके मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास

ऐतिहासिक उपन्यासकारों में सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हैं। वृन्दावनलाल वर्मा, राहुल सांस्कृत्यायन, चतुरसेन शास्त्री, यशपाल, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, प्रतापनारायण

श्रीवास्तव, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रघुवीरशरण 'मित्र', वीरेंद्र कुमार, शिवसागर मिश्र, नरेंद्र कोहली, मनुशर्मा, शिवप्रसाद सिंह, जयशंकर द्विवेदी, आनंद शर्मा, बच्चन सिंह, रंगनाथ तिवारी, इत्यादि उल्लेखनीय है।

इतिहास के आश्रय से अपने विचारों का विवेचन एवं तर्क वितर्क तथा पुष्टि करने के लिए ऐतिहासिक उपन्यास का सहारा लेते हैं, किंतु यहां ध्यान देने वाली बात है कि यथार्थ निर्माण के प्रयास में उपन्यास सिर्फ शुष्क ऐतिहासिक व्यौरा बनकर न रह जाए। इस पर चर्चा करते हुए नारायण भारद्वाज लिखतें हैं – "वस्तुत: ऐतिहासिक उपन्यास पहले उपन्यास है, बाद में अन्य कुछ है। जीवन की व्याख्या या उसका चित्र उपस्थित करने के लिए ऐतिहासिक तथ्यों का उसमें कला की साधना के लिए संयोजन हुआ करता है। अतः उपन्यासकार उनमें कल की साधना के लिए कल्पना का समूचित उपयोग भी कर सकता है।"[15] अर्थात ऐतिहासिक उपन्यासकारों को दोहरी जिम्मेदारियों का पालन करना पड़ता है। ऐतिहासिक तथ्यों की हिफाज़त करते हुए उपन्यास की मूल सरस एवं रसात्मक बनाये रखना निश्चित ही अनुचित तथा निंदनीय है।

ऐतिहासिक उपन्यासकारों में सफल उपन्यासकार हैं वृन्दावन लाल वर्मा का 'गढ़कुण्डार', ' विराट की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', में रानी लक्ष्मीबाई के स्वराज्य संघर्ष प्रस्तुत है। 'कचनार', 'मृगनयनी', में ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर और उनकी रानी मृगनयनी की प्रेम कथा वर्णित है, इसमें मानसिंह के समय की राजनीतिक स्थितियों को उजागर किया गया है और मृगनयनी की वीरता तथा बुद्धि का चित्रण किया है। 'अहिल्याबाई', 'टूटेकाँटे', 'भुवन विक्रम', 'रामगढ़ की रानी', 'माधव जी सिंधिया', 'महारानी दुर्गावती', 'सोती आग', 'कीचड़ और कमल', 'देवगढ़ की मुस्कान' इत्यादि प्रसिद्ध उपन्यास है।

यशपाल एवं राहुल सांस्कृत्यायन ने इतिहास का सहारा मार्क्सवादी जीवन की व्याख्या करने के लिए किया है। यशपाल ने दिव्या की भूमिका में अंकित किया है "इतिहास मनुष्य का अपनी परम्परा में आत्मविश्लेषण है। × × इतिहास के मंथन से प्राप्त अनुभव के अनेक रत्नों में

सबसे प्रकाशमान है – मनुष्य भोक्ता नहीं कर्ता हैं। सम्पूर्ण माया मनुष्य की ही क्रीडा है। × × मनुष्य से बड़ा है, केवल उसका अपना विश्वास और स्वयं उसका ही रचा हुआ विधान। अपने विश्वास और विधान के सम्मुख वह विवशता अनुभव करता है और स्वयं ही उसे बदल भी देता है। इसी सत्य को अपने चित्रमय अतीत की भूमि पर कल्पना में देखने का प्रयत्न दिव्या है।"[16] इससे पता चलता है की लेखक के मन में सत्य है, जिसे वह इतिहास की पृष्ठभूमि पर कल्पना के माध्यम से उजागर करना चाहता है। 'अमित' में इतिहास से अधिक कल्पना को प्रधानता दी गई है। इतिहास बस इतना है कि अशोक ने कलिंग पर चढ़ाई की थी , इसके अतिरिक्त सब काल्पनिक है। करवेल कि मृत्यु के पश्चात अमित को राजसिंहासन मिल जाता है। अमृतलाल नागर का 'शतरंज के मोहरे' में अवध के नवाबों के जीवन का वर्णन है। 'साथ घूँघट वाला मुखड़ा' इसमें नागर जी ने स्त्री के हदय को जानने का प्रयत्न किया है। 'एकदा नैमिषारण्ये', आधुनिक भारत को एक सूत्र में बाँधने के लिए सांस्कृतिक आधार से आकांक्षा की है।, 'मानस का हंस', 'खंजन नयन', दोनों में तुलसी और सूर के जीवन को आधार पर लिखा है। 'करवट', 'पीढ़ियाँ' सामाजिक जीवन का विकास बताया गया है। नागर जी ने अंग्रेजी पढ़े-लिखे मध्यवर्ग की बदलती मानसिक प्रवृत्ति को दिखाया गया है। ऐतिहासिक- पौराणिक उपन्यासों में भी नागरजी की दृष्टि मानवतावादी ही पमुख रही हैं।

राहुल सांकृत्यायन का 'सिंह सेनापति', 'जययौधेय', 'मधुर स्वप्न', इनके अधिक चर्चित उपन्यास है। इन्होने ऐतिहासिक प्रमाण देकर अपने उपन्यासों में यकीन दिलाने का प्रयत्न किया है। लेकिन ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टि ही अधिक मत्वता दी हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारु चन्द्रलेख', 'पुनर्नवा' आधुनिक स्त्री के शोषित रूप को परिलक्षित किया है और वर्णव्यवस्थ कुरूतियों को छोड़कर अपनी आधुनिक दृष्टि को दिखाया है। 'आनामदास का पोथा', आदि ऐतिहासिक उपन्यास है। भटनी निपुणिका सूचरिता महामाया इत्यादि स्त्री पात्रों के प्रति अति संवेदना दिखाकर द्विवेदी जी ने आधुनिक दृष्टि से परिचालित होने का परिचय प्रस्तुत

किया है। रांगेयराघव का 'मर्दों का टीला', 'चीवर', 'राह न रुकी', 'जब आवेगी कालीघटा' आदि उपन्यासों में भी इतिहास की रक्षा हुई है। चतुरसेन शास्त्री 'वैशाली की नगरवधू', 'सोमनाथ', वयंरक्षाम: इत्यादि प्रसिद्ध उपन्यास है। रघुवीरशरण मित्र का 'आग और पानी', 'ढाल तलवार', ओस के आँसू, 'उजाला कफन', 'राख की दुल्हन', 'काँपती आवाज', 'दिन रोया रात हँसी', 'तप का तेज रूप के जाले', 'प्यास और शोले', 'सोने की राख', 'बलिदान', 'रंग-बिरंगे चेहरे', 'सदा सदा के प्रश्न', आदि प्रमुख है।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव का ' बेकसी का मजार', वीरेन्द्र कुमार का 'अनुत्तरयोगी', शिवप्रसाद सिंह का, 'नीलाचाँद', 'कुहरे में युद्ध', 'दिल्ली दूर है', 'वैश्वानर', 'बच्चन सिंह ने सूतो वा सूत पुत्रो वा', 'पांचाली', इत्यादि प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासकारों ने आर्थिक, सामाजिक, आंचलिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, उपन्यासों का निर्माण किया है, और उसके साथ ही आधुनिकता को स्वीकार कर अपने, साहित्य की रचना की है।

स्वतंत्र्योत्तर साहित्य 1950 से अब तक

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात हिंदी उपन्यास साहित्य का विकास विभिन्न प्रकार से हुआ। इस युग में लिखे उपन्यासों में जीवन के सभी क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। देश-विभाजन के परिणाम स्वरूप धार्मिक, सांप्रदायिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में कई नई समस्या उत्पन्न हुई। जिसके लिए साहित्यकारों ने अत्यधिक जागरूकता का परिचय देते हुए, उनका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों में जो परिवर्तन इस युग में देखा गया, उसका सम्यक परिचय स्वतंत्रता आधुनिक युग में लिखे गये उपन्यासों में उद्घटित किया गया है। यह काल उपन्यास की दृष्टि से समृद्ध मान जाएगा। इस काल के उपन्यास में शिल्पगत कथ्यगत्वविविधता देखने को मिलती है। अनेक नये पुराने प्रतिभाशाली साहित्कारों ने अपना

महत्वपूर्ण योगदान दिया। यशपाल, भगवती चरण वर्मा, जैनेंद्र, रांगेय राघव, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', अज्ञेय इत्यादि उपन्यासकार अपनी प्रतिभा से लाभान्वित करते रहे हैं। फणीश्वरनाथ 'रेणु', मोहन राकेश, कमलेश्वर, नागार्जुन, धर्मवीर भारती, राजेंद्र यादव आदि नए प्रभावशाली रचनाकारों ने इस युग के अनुरूप उपन्यास को नई दिशा प्रदान करने का प्रयत्न किया हैं। रामदास मिश्र, हिमांशु जोशी,विवेकी राय, जगदीशचंद्र, नरेंद्र कोहली आदि रचनाकारों ने कई आयाम प्रस्तुत किये गये हैं। अन्य विधाओं की तरह ही उपन्यासो में भी वैयक्तिक मूल्यों से लेकर जनवादी मूल्यों तक का सफर तय किया है।

आजादी के बाद के मूल्यों का विघटन राजनीतिक, भ्रष्टाचार, व्यवस्थागत स्थितियों में जूझते लोग उपन्यास के केंद्र में आए और दूसरी और वैयक्तिक आदर्शों की कीर्ती करने वाले उपन्यासकार बड़े पैमाने पर सामने आए। यहां एक तरफ अपनी जमीन से जुड़ने का प्रयत्न किया गया। वहीं दूसरी तरफ सार्त्र, फ्राइड, अस्तित्ववादी, मनोवैज्ञानिक विचारधारा के प्रभाव में अपने परिवेश को देखना- परखने का प्रयत्न किया गया।

कहानी का परिचय

हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में कहानी ही एक ऐसी विधा है जिसका आरंभ मानव मन के भाव की अभिव्यक्ति से हुआ है "कहानी का सम्बन्ध भावाभिव्यंजन से है ऐसी भावाभिव्यंजना जो भावनाओं को प्राय: उसी रूप में उसी तीव्रता के साथ उसी प्रभाव के साथ व्यक्ति तक प्रेषित कर सके, जिस रूप में उसका उदय रचनाकार के अंतर्मन में हुआ है। इसी रूप में कहा जा सकता है कि कहानी समस्त साहित्यिक विधाओं की जननी है।"[17] हिंदी कहानी का विकास भी उसी तरह से हुआ जिस तरह में विश्व के अन्य विशेष भाषा साहित्य का विकास हुआ। हिंदी के आरंभ के कहानीकारों पर यह विपत्ति थी, कि वह अपने साहित्य का विकास वहाँ से करते हैं जहां पश्चिमी और भारतीय श्रेष्ठकर अंग्रेजी एवं बँगला साहित्य पहले से ही विद्यमान था। इस परिस्थिति में इन रचनाकारों का विकास मौलिक तथा यथार्थ रूप से संभव होना मुश्किल था।

किंतु इसके माध्यम से हिंदी के प्रारंभिक रचनाकार अपने परिकल्पित भारतीय स्वरूप को अंकित नहीं कर पातें। हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी पं. किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'इन्दुमती' है किंतु कुछ लोगों ने शेक्सपियर का नाटक 'टेम्पेस्ट' का भावानुवाद ही कहा गया। 'रानीकेतकी की कहानी', 'राजा भोज का सपना', 'देवरानी जेठानी की कहानी', आदि विभिन्न ऐसे आख्यान गद्य रहे हैं जिसमें 'इन्दुमती' की प्रणाली को देखा जा सकता है। इस प्रकार हिंदी की आरंभ की कहानियाँ भारत की उपलब्धि थी, उसकी विषय वस्तु निश्चित रूप से भारत की थी लेकिन भाषागत एवं शिल्पगत प्रभाव उसने पश्चिम से ही लिया गया था। आधुनिक कहानियों की प्रारंभिक रचनाओं का विकास पश्चिम से हुआ था इसी कारण इसका असर उसपर होना सहज ही था।

प्रारंभिक कहानियाँ

हिंदी कहानियों का प्रारंभ सभी साहित्यकारों ने सहसहमति से 'सरस्वती' के प्रकाशान से माना है। सरस्वती के प्रकाशन के शुरुआती दो सालों में हिंदी कहानी का स्वरूप रचना निर्धारित हो रही थी। इस रचना के कई तरह के प्रयोग किए गए इसी प्रयोग के दरमियान शेक्सपियर के नाटकों के इतिवृत्ति के अनुसार वर्णनात्मक शैली में लिखी गई तथा काल्पनिक पात्रों, चरित्र और संवेदनात्मक, भावुकता के माध्यम से लिखी गई कहानियाँ, आत्मकथात्मक दृष्टि से अंकित कहानियाँ, घटना प्रधान कहानियाँ, संस्कृत नाटकों के आख्यान पर आधारित कहानियाँ तथा सामाजिक भावुकता के आधार पर आदि प्रमुख कहानियाँ है। इस विषय में लक्ष्मीनारायण लाल का कहना है "यहाँ यह भी स्पष्ट है कि इन समस्त प्रयोगों से निर्मित कोई भी कहानी शिल्पविधि की दृष्टि से हिंदी की मौलिक कहानी नहीं कहीं जा सकती, क्योंकि इन कहानियों में से कुछ भावपक्ष की दृष्टि से छायानुवाद हैं, भावानुवाद हैं, और शेष कलापक्ष: की दृष्टि से कहानी नहीं है, लेकिन यह अवश्य है कि इन प्रयोगात्मक कहानियों में से प्राय: अधिक कहानियाँ अपने लक्ष्य की ओर अवश्यमेव प्रेरित हैं। यही कारण है कि वस्तुत: इन्हीं की प्रेरणा और भाव-शक्ति के

फलस्वरुप शीघ्र ही 'सरस्वती' के तीसरे ही वर्ष मौलिक हिंदी-कहानी का प्रारंभ हुआ। शिल्पविधि की दृष्टि से हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी है , रामचंद्र शुक्ल कृत ग्यारह वर्ष का समय।"[18] इसके अतिरिक्त हिंदी मौलिक कहानियों का विकास इस प्रकार है पं.वेंकटेशनारायण द्वारा 'एक अशरफी की आत्म-कहानी', सूर्यनारायण की 'चन्द्रहास अदभुत आख्यान', बंगमहिला की 'दुलाई', श्री वृन्दावनलाल द्वारा 'राखीबन्द भाई', 'तातार', तथा एक वीर राजपूत आदि प्रमुख हैं।

1909 में काशी से 'इन्दु' के प्रकाशन से प्रसाद जी का कहानी साहित्य में आगमन हुआ। प्रसाद की प्रारंभिक कहानी आग गुलाम चित्तौर-उद्धार इत्यादि इंदु के शुरुआती दौर में प्रकाशित हुई थी। इसके अतिरिक्त विश्वम्भरनाथ जिज्जा की प्रथम मौलिक कहानी 'विदीर्ण हृदय' भी इन्दु में प्रकाशित हुई थी। सन् 1918 ई. में काशी से हिंदी गल्पमाला नामक एक पत्रिका प्रकाशित हुई

उसके प्रथम भाग के द्वितीय अंक में श्री जी.पी. श्रीवास्तव की 'मैं न बोलूँगी', कहानी प्रकाशित हुई। शैली की दृष्टि से महत्वपूर्ण कहानी थी, और इलाचन्दजोशी की 'सजनवाँ' नमक प्रथम कहानी भी इसी में प्रकाशित हुई , और आगे चलकर प्रसाद जी की कहानियाँ नियमबद्ध तरीके से इसमें प्रकाशित होने लगी , जैसे कि 'पत्थर की पुकार', 'करुणा की विजय', 'उस पार का योगी', 'प्रतिमा', 'पाप की पराजय', 'दुखिया', 'खंडहर की लिपि', इत्यादि कहानियों गल्पमाला के बात के अंको की कहानियाँ हैं।

प्रेमचन्द युग

हिंदी की प्रारंभिक कहानियों का विकास अप्रत्याशित तथा देवक घटनाओं व प्रसंगों पर आश्रित रहता था। विकास काल में यह चरित्रों की मनोवैज्ञानिक विशेषता के माध्यम से होने लगी। प्रेमचंद जी की पहली कहानी 'पंचपरमेश्वर' जून 1916 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद हिंदी गल्पमाला के प्रशासन से हिंदी कहानी को अधिक प्रेरणा मिली। इस तरह पहले चरण में सरस्वती के माध्यम से प्रेमचंद एवं चन्द्रधर शर्मा गुलेरी तथा इंदु के माध्यम से जयशंकर

प्रसाद और हिंदी गल्पमाला के माध्यम से जी.पी श्रीवास्तव और इलाचन्द्र जोशी आदि श्रेष्ठ कहानी रचयिता सामने आये। प्रथम धारा यथार्थवादी दृष्टि और जीवन के व्यावहारिक स्थिति को लेकर आगे बढ़ी इस धारा में प्रेमचंद, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, सुदर्शन, विशंभर नाथ शर्मा 'कौशिक', ज्वालादत्त शर्मा, प्रधान रहे हैं।

द्वितीय धारा यह आदर्श प्रधान प्रवृत्ति से प्रभावित होकर भाव - सत्य लेकर विकसित हुई। इस धारा में जयशंकर प्रसाद, राधिका रमण प्रसाद सिंह, चंडी प्रसाद, हदयेश आदि। सन् 1930 ई. तक आते - आते प्रेमचंद हिंदी कथा साहित्य का सम्राट के रूप में स्थापित हो गए। वह लगातार समय अनुसार अपने को परिवर्तित करते रहे 1960 से लेकर 1936 ई. तक आते-आते प्रेमचंद ने अपने जीवन का नजरिया तथा मान्यताओं में बहुत बदलाव किया, उन्होंने ग्रामीण जीवन के अनेकों पहलुओं पर कहानी लिखी, उन्होंने लगभग 300 से ज्यादा कहानी लिखी। वह कहते हैं "सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।"[19] अपनी कहानियों का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि - "सुजान भगत', 'मुक्ति मार्ग', 'पंचपरमेश्वर', 'शतरंज के खिलाड़ी', और 'महातीर्थ', नामक सभी कहानियों में एक न एक मनोवैज्ञानिक रहस्य खोलने की चेष्टा की गई है।"[20] इस प्रकार सामाजिक कुरीतियों, प्रसंगों,घटनाओं, को लेकर प्रेमचंद जी अनुभव एवं मनोवैज्ञानिक यथार्थ तक पहुँचे। प्रेमचंद काल में कहानियों के कई प्रकार सामने आये। जो इस प्रकार है - चरित्र प्रधान, वातावरण प्रधान, कथानक प्रधान , कार्य प्रधान कहानियाँ आदि।

चरित्र प्रधान कहानियों में लेखक चरित्रों को प्रभावशाली बनाता है। कहानी की मर्यादित सीमा होने के कारण चरित्र के किसी भी एक अंग को निपुणता से अंकित किया जाता है। चरित्र प्रधान कहानियों में प्रधान लेखक प्रेमचंद जी माने जाते हैं, जिसके अंतर्गत उनकी विभिन्न कहानियाँ आती हैं – 'बड़े घर की बेटी', 'बाँका गुमान', 'आत्माराम', 'बूढ़ी काकी', 'दफ्तरी', 'सारंधा', ' मुक्ति-मार्ग', 'अग्नि समाधि', इत्यादि।

वातावरण प्रधान कहानी का लक्ष्य जीवन की मुख्य विचारों की प्रेरक उपादानों को कथानक की प्रगति का वास्तविक करण बनाकर कहानी की प्रगति करता है कथाकार इन उपादानों को बड़े ही सूक्ष्मता से प्रस्तुत करता है। कि वह जीवित होकर मनोभाव को अनुग्रह करने लगते हैं हिंदी साहित्य में वातावरण प्रधान कहानिकारों में गोविंदवल्लभ पंत, सुदर्शन, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, प्रसाद की 'आकाशदीप', 'प्रतिध्वनि', 'बिसाती', 'हिमालय का पथिक', समुद्र सन्तरण', 'स्वर्ग के खँड़हर', इत्यादि वातावरण पधान रचनायें हैं। कथानक प्रधान कहानियों में पात्रों तथा अवस्थाओं का संयोगो को अधिक महत्व देते हैं। कथानक प्रधान कहानीकार हैं विशंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', जवालादत्तशर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, आदि। कार्य प्रधान कहानी करो में महत्वपूर्ण कहानीकार हैं। गोपालराम गहमरी, दुर्गाप्रसाद खत्री, मथुराप्रसाद खत्री, शिखंडी, उपेंद्रनाथ अश्क, जी.पी. श्रीवास्तव, बेचनशर्मा 'उग्र', रायकृष्णदास आदि। प्रेमचंद युग में हिंदी कहानियों में कहानी के प्रकारों के साथ ही शैलियों का भी विकास हुआ। उसमें वर्णनात्मक शैली, संलाप शैली, आत्म-चरित्रतात्मक शैली, पत्र-शैली, डायरी-शैली आदि प्रमुख रही हैं।

प्रेमचंद युग के अंतिम चरण में नई दिशा साफ दिखाई देने लगी। प्रेमचंद सुधारवादी युग के प्रधान रचयिता रहे हैं, इस युग के बाद संघर्ष और संक्रांति युग हमारे समक्ष दिखाई दिया। कहानियों में निम्नमध्यम वर्ग, मध्यवर्ग की तमाम समस्याओं को अपनी कहानी का विषय बनाया जाने लगा। इस कला में आदर्शवादी परंपरा से ऊपर उठकर यथार्थ एवं वैज्ञानिक यथार्थवादी का दामन थामा गया। इनमें प्रमुख कहानीकार जैनेंद्र, इलाचन्द जोशी, यशपाल, अज्ञेय तथा उपेन्द्रनाथ 'अक्श' प्रमुख रहे हैं।

जैनेन्द्र कहानियों में चरित्र प्रधान, मानसिक द्वंद्व, स्त्री पुरुष के रिश्तों को सूक्ष्मता से दर्शाया है, संवेदना तथा हृदयस्थ को छू जाने वाली प्रेममयी स्थित, राष्ट्रीयता, नैतिक प्रश्नों पर संदेश, प्रतीक योजना तथा रहस्यता आदि कुल मिलाकर उनकी कहानियों में सब कुछ पाया जाता है।

इनकी कहानी संग्रह 'खेल', 'वातायन', 'नीलम देश की राजकन्या', 'एकतारा', 'दो चिड़ियाँ', 'याजेब', 'जयसंधि' इत्यादि प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं । उनकी सभी कहानियां जैनेंद्र की कहानी शीर्षक से दस भागों में प्रकाशित उनकी कहानियों के माध्यम से पहली बार हिंदी साहित्य में व्यक्ति को प्रधानता मिली । उनका कहना है कि " परिस्थिति मेरे लिए कोई 'मन:स्थिति' से स्वतंत्र अस्तित्व रखने वाली चीज नहीं है । उसे दृष्टि से परिस्थिति की बात करूँ तो मेरे जीवन का कच्चा चिट्ठा ही खून निकलेगा । उसे खोलना मुझे मंजूर नहीं है । न खुले, इसलिए तो कथा-कहानी और उपन्यास है ।"[21] यशपाल सामाजिक यथार्थ को मार्क्सवादी दृष्टि से उद्घाटित करने वाले साहित्यकार कहे जाते हैं । उनके 'पिंजरे की उड़ान', 'ज्ञानदान', 'अभिशप्त', 'तर्क का तूफान', 'भस्मावृत चिनगारी', 'वों दुनियाँ', 'फूलों का कुर्ता', 'धर्मयुद्ध', 'उत्तराधिकारी' 'चित्र का शीर्षक', 'उत्तम की माँ', 'सच बोलने की भूल', 'तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ', 'भूख के तीन दिन' आदि इनके प्रमुख कहानी संग्रह है । उनकी कहानियों के विषय में राजेंद्र यादव जी कहते हैं "यशपाल ने मार्क्सवादी दृष्टि से एक के बाद एक सशक्त कहानियाँ लिखीं । उन्होंने समाज के परंपरागत मूल्यों और रूढ़ियों के विरुद्ध व्यंग्य और युक्ति के हथियारों से तीखे प्रहार किये । जिस निर्भीकता से उन्होंने अंग्रेजी राज्य के खिलाफ 'साग' जैसी कहानियाँ लिखीं । उसी निर्भीकता से धर्म और पुरानी नैतिक मान्यताओं के विरुद्ध 'मनु की लगाम', 'धर्मरक्षा', 'ज्ञानदान', 'प्रतिष्ठा का बोझ', 'दूसरी नाक' इत्यादि भी ।"[22] इलाचन्द्र जोशी मनोविश्लेषण धारा के प्रवर्तक के रूप में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की उनकी कहानी विशेष कर मध्यवर्गीय शिक्षित व्यक्तियों के मानसिक उन्नयन पर जोर दिया गया हैं । उनकी प्रसिद्ध कहानी संग्रह है 'धूपरेखा', 'दिवाली और होली', 'रोमांटिक छाया', 'आहुति', 'डायरी के नीरस पृष्ठ', 'खंडहर की आत्माएँ', 'कँटीले फूल लजीले काँटे', इत्यादि। उनके विषय में राजेंद्र यादव जी कहते हैं “वह भीतर से भीतर की ओर उतरते हैं चेतन-अवचेतन-उपचेतन के अनेक अप्रीतिकर स्तरों का उद्घाटन उन्होंने किया है और इस प्रक्रिया में उनके पात्र साधारण सामान्य के बजाय विलक्षण, विकलांग और हीन होते हुए दिखने लगे हैं ।"[23]

अज्ञेय जी प्रमुख रूप से मध्यवर्गी चेतना के रचनाकार हैं। उन्होंने सामाजिक संघर्षों को कहानी का विषय बनाया। किंतु संघर्ष को व्यक्ति के माध्यम से समझा। क्योंकि नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों के केंद्र में व्यक्ति ही है उनकी कहानी संग्रह इस प्रकार है 'विपथगाह', 'परंपरा', 'कोठारी की बात', 'शरणार्थी', 'जयदोल', 'अमरवल्लरी' 'ये तेरे प्रतिरूप' आदि।

इनके अतिरिक्त प्रेमचन्द युग में अनेको लेखकों ने अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। उपेंद्रनाथ 'अश्क', भगवती प्रसाद वाजपेयी, अमृतलाल नागर, भगवती चरण वर्मा, विष्णु प्रभाकर , द्विजेंद्रनाथ मिश्रा 'निर्गुण', और इस युग की महिला लेखिकाओं में उषादेवी मित्रा, होमवती देवी, सत्यवती मलिक, कमला चौधरी, चंद्रकिरण सोनरेक्सा उल्लेखनीय हैं। लेखिकाओं ने अपनी घरेलू जीवन की विविध दृश्य अंकित किये।

प्रेमचंद्रोत्तर युग

1936 ई. से 1950 तक प्रेमचंद समय के कुछ रचनाकार जो जीवित थे वे भी कहानी लिखते रहे हैं। इस युग में हंसराज रहबर, रंगेय राघव, अमृतराय आदि नये लेखको का भी आगमन हुआ। इस युग में स्वतंत्रता के साथ देश का बँटवारा हुआ और सांप्रदायिक दंगों ने हमारे देश की नींव हिला दी। युद्ध के समय ममैं बँगाल में भीषण अकाल में मानव के आदर्शों को हिला कर रख दिया। स्वतंत्रता के साथ ही असहाय और विस्थापितो की समस्या तथा आर्थिक विपत्ति का सामना करना पड़ा, इन सभी घटनाओं ने हमें वास्तविकता के समक्ष अधिक सचेत कर दिया। सन् 1950 तक इस तरह से हम संक्रांति की परिस्थिति ही उजागर रही और किसी भी साहित्य ज्ञान मूलक मनोवृति देखने को नहीं मिलती। सन् 1954 ई. में कहानी के पूनः प्रकाशन से स्पष्ट हो जाती है कि " आज के हिंदी भाषी के जीवन की विविधता और समस्याओं की जटिलता के हर पहलू को हिंदी-कहानी ने अपने में आवेष्ठित कर लिया है। शिल्प-सौंदर्य और विषय वस्तु दोनों ही में आज की हिंदी कहानी बारह वर्ष पहले की हिंदी-कहानी से कहीं आगे है।"[24] कहानी को आगे बढ़ाने वाले समृद्ध बनाने वाले रचनाकार इस प्रकार हैं। मोहन राकेश, राजेंद्र यादव,

कमलेश्वर, फणीश्वरनाथ 'रेणु', हरिशंकर परसाई, भैरवप्रसाद, लक्ष्मीनारायणलाल, अमरकांत, अमृतराय, विष्णुप्रभाकर, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडार, कृष्णा सोबती, शिवप्रसाद सिंह, शैलेश मटियानी, कृष्णबलदेव वैद, निर्मल वर्मा, ज्ञानरंजन इत्यादि।

नई कहानी

1954 बात की कहानी 1960 तक आते-आते नई कहानी में परिवर्तित हो गई। सन् 1960 ई. में भैरवप्रसाद गुप्त ने 'नयी कहानियाँ' नामक पत्रिका का संपादन किया। नई कहानी के आविर्भाव को वर्णित करते हुए प्रेमचंद जी की 'कफन' कहानी तक की चर्चा की गई, उनकी प्रारंभिक कहानी अपेक्षा उनकी अंतिम कहानी बिल्कुल नयी थी। प्रेमचंद जी के बाद के साहित्यकारों में जैनेंद्र, अज्ञेय, यशपाल आदि लेखकों ने अपनी मर्यादाओं के पश्चात भी प्रेमचंद से भिन्न दृष्टि परिलक्षित हुई। अज्ञेय तो शिल्प दृष्टि से भी प्रधान रहें है। सन् 1954 से 1962 तक के मध्य नई कहानी प्रसिद्ध के शिखर पर पहुँच चुकी थी। 1961 ई. में नामवर सिंह ने 'नयी कहानियाँ' पत्रिका में 'हाशिये पर' प्स्तम्भ के भीतर उन्होंने भिन्न-भिन्न विश्लेषण किया। 1965 ई. तक नयी कहानी अधिक चर्चा में रही। कमलेश्वर ने 'मांस का दरिया' में 'आत्मकथ्य' के रूप में लिखी गई भूमिका में वास्तविकता को नई कहानी का मूल आधार माना गया है इस दृष्टि से "नई कहानी आग्रह की कहानी नहीं है, प्रवृत्तियों की हो सकती है, और उसका मूल स्रोत है–जीवन का यथार्थबोध, और इस यथार्थ को लेकर चलने वाला एक विराट मध्य और निम्न मध्य वर्ग है, जो अपने जीवन-शक्ति से आज के दुर्दान्त संकट को जाने-अनजाने झेल रहा है। उसका केंद्रीय पात्र है (अपने विविध रूपों और परिवेशों में) जीवन को वहन करने वाला व्यक्ति।"[25] नयी कहानी को ख्याति प्राप्त करने वाले प्रमुख कहानीकार इस प्रकार है मारकण्डेय, शिव प्रसाद सिंह, फणीश्वर नाथ 'रेणु', कमलेश्वर, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, शिवप्रसाद सिंह, मन्नू भंडारी, राजेंद्र यादव, ज्ञानरंजन, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, इत्यादि।

आज की कहानीकार का वास्तविक बोथ का विश्लेषण करते हुए राजेंद्र यादव 'एक दुनिया: समानांतर' की लम्बी भूमिका में लिखते हैं "इसीलिए दृश्य की इस विकृति से कतराकर वह अब किसी भी महिमामयी बेईमानी का शिकार नहीं होना चाहता। अगर शुभ और महान् झूठा है अगर पारिवारिक नैतिक और सामाजिक संबंध बिखर रहे हैं अगर व्यक्ति हार और टूट रहा है, अगर आदमी क्षुद्र और ओछा है (इसे वह बदला हुआ कहना ज्यादा सही समझता है।)और अगर सामने कोई रास्ता नहीं है तो वही सही है। उसे वही सब स्वीकार है। वही उसकी रचनाओं से उभरे, वही उसकी कूँची और कलम से आये..... लेकिन आये बिना किसी लाग- लपेट के; निरनिर्ममता और तटस्थता के साथ.....अब कोई रश्मि पर्दा नहीं, कोई अपराधभाव या पलायन नहीं, कोई खेत और क्षमा नहीं.....वास्तविकता को पूरी प्रामाणिकता के साथ, पूरी सच्चाई के साथ अपनी संपूर्ण संश्लिष्टता के साथ उभरने दो....।"[26] जिस प्रकार हिंदी काव्य में कई वादों प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, छायावाद, हालावाद, आदि का आविर्भाव हुआ, उसी प्रकार नयी कहानी में विभिन्न वादों का उद्भव हुआ है उसमें प्रमुख रूप से कहनी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, सक्रिय कहानी, समान्तर कहनी, अत्याधुनिक इत्यादि।

समाज के विभिन्न वर्गो का परिचय

वर्ग समाज के उस समुदाय को कहते हैं जिसके अंतर्गत आर्थिक आधार पर स्तर भिन्नता देखने को मिलती है। सामाजिक तथा आर्थिक स्तरों के भेद ही वर्ग निर्धारण का मूल कारण होता है। एक विशेष प्रकार के आर्थिक तथा सामाजिक स्तर वाले लोग एक समूह में शामिल होकर एक विशेष वर्ग का सृजन करते हैं। मैकाइवर तथा पेज जैसे समाजशास्त्रियों ने 'वर्ग' की परिभाषा करते हुए कहा है – "किसी वर्ग का अर्थ ऐसे श्रेणी अथवा प्रकार से है जिसके अंतर्गत व्यक्ति अथवा व्यक्ति-समूह आते हो।"[27] डॉ.अशोक धुलधुले के शब्दों में – "वर्ग से तात्पर्य एक ऐसा तबका है, जो समाज की आर्थिक असमानता के कारण अस्तित्व ग्रहण करता है और उस तबके के सदस्यों के कुछ विशिष्ट गुणों के कारण एक वर्ग दिखाई देता है। व्यक्तिनिष्ठा तथा वस्तुनिष्ठा

स्तरीकरण द्वारा व्यक्ति की आय, व्यवसाय, शिक्षा, निवास, संस्कृति, कपड़े, जाती, कुल, नैतिक अभिवृद्धि आदि पर उसका स्तर निश्चित किया जाता रहा किन्तु मार्क्स समाज में केवल दो ही वर्ग मानते हैं – बुर्जुआ और प्रोलिटैरियट (श्रमिक) ।"[28]

प्रत्येक समाज का वर्ग एक विशिष्ट अंग होता है । जिसका निर्धारण उस समाज के व्यक्तियों के परिश्रम तथा रोजी-रोटी को प्राप्त करने के यत्नों द्वारा होता है । प्राचीन काल में जब अधिक विस्तार नहीं हुआ था, उस समय हमारा समाज दास और स्वामी वर्ग में विभक्त था । हर काल में समाज में शोषक और शोषित वर्ग विद्यमान रहे है । शोषक वर्ग और शोषित वर्ग के लाभ बिल्कुल पृथक है । दो वर्ग अपनी-अपनी प्रसिद्धि के लिए संघर्ष करते हैं । शोषक वर्ग अधिक से अधिक लाभ कमाना चाहता है । जबकि शोषित वर्ग अपनी मजदूरी बढ़ाने का प्रयत्न करता है । दोनों वर्गों की आकांक्षायें और हित दोनों भिन्न होने के कारण उनमें सदा संघर्ष चलता है ।

इन दोनों वर्गों के अतिरिक्त एक अन्य वर्ग भी अस्तित्व में आया, जिसे मध्य वर्ग कहते हैं। प्रत्येक वर्ग को अपने वर्ग का एहसास भली-भाँति है । पहले जातिगत वर्ग विशेष था आज उसका स्थान समूह वर्ग ने ले लिया है । अतः हमारा समाज अब दो वर्गों से नहीं अपितु तीन वर्गों में विभक्त है। उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग ।

उच्च वर्ग

आधुनिक समय की गतिशील औद्योगिक शिष्टता में उच्चवर्ग उन तकरीबन पाँच प्रतिशत लोगों से है । जिनके पास जरूरत से जादा धन-दौलत, ऐशो-आराम तथा सामाजिक प्रतिष्ठा होती है । उनकी संपत्ति या तो विशाल भूसंपदा, उद्योग-धंधे आदि पर आधिपत्य से या उच्च पदों पर विद्यमान होने से उन्हें प्राप्त होता है । अधिकत्तर उच्च वर्गीय लोग पैतृक संपत्ति के वारिशदार के रूप में उच्च वर्ग की सदस्यता प्राप्त करते हैं किंतु पूँजी व्यवस्था की व्यापारिक गतिविधियों में ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो अपनी व्यक्तिगत योग्यता के बल पर उच्च वर्ग में प्रवेश करते हैं लेकिन

समाज में ऐसे नवगत व्यक्तियों की उतनी प्रतिष्ठा नहीं होती जितनी प्रतिष्ठा परंपरा से सर्वोत्कृष्ट वर्ग के सदस्यों की होती है। उच्चवर्गीय उपसभ्यता पर संरचित "द थ्योरी ऑफ द लिशर क्लास" के लेखक "वेबलन्" ने नये-नये सम्पन्न वर्ग मे शामिल हुए व्यक्तियों के विषय में लिखा हैं – "उच्चवर्ग सामाजिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लक्ष्य से ही ऐसे नये संपन्न प्रदर्शनी में लग जाते हैं। पूरे समाज को अपने को अपने वैभव से प्रभावित करके सामाजिक प्रतिष्ठा हड़प लेने की उनकी अबोध बहुत कोशिश है। यह प्रदर्शन प्रियता।"[29]

उच्च वर्ग के लोग किसी भी व्यवसाय या पेशो में जाकर शारीरिक श्रम नहीं करते हैं। यही शिक्षा अपने बच्चों को भी प्रदान करते हैं। किसी कारण से आर्थिक परिस्थिति बिगड़ने पर भी अपने रुतबें पर आंच नहीं आने देते। अपने वर्ग की श्रेष्ठता को भली-भांति समझते हैं। यही कारण है कि निम्नवर्ग से सदैव दूरी बनाये रखता हैं। निवास-स्थान, शिक्षण-संस्था, सामाजिक-संबंधों आदि का चयन सदा ही वह सावधानी पूर्वक करता दिखाई देता है। निम्नवर्ग के प्रति सहानुभूति है, ऐसा दिखाता है, किन्तु उनका शोषण करने से कभी पीछे नहीं हटता। अपनी सुख-सुविधाये बनाये रखने में उत्सुक होने से ही वह क्रांतिकारी साक्षात्कारों तथा बुनियादी बदलाव का सरेआम विरोध करता है। प्रतिस्पर्धा और महत्वाकांक्षा की भावनायें भी उच्चवर्ग उपसभ्यता वालों में प्रायः अदृश्य है।

मध्यवर्ग

अशोक धुलधुले के शब्दों में – "'मध्य वर्ग' (middile class) शब्द का प्रथम प्रयोग इंग्लैंड में 1812 ई. में हुआ था। सन1831 में 'स्पेक्टेटर' पत्रिका में 'बोमौना' नामक लेखक ने ईस वर्ग को 'देश का धन और मस्तिष्क' के रूप में चित्रित किया। हिंदी में 'मध्य वर्ग' तथा 'मध्यम वर्ग' दोनों शब्द अँग्रेजी शब्द 'मिडिल क्लास' के लिए प्रचलित हैं। "[30] यह वर्ग सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दूसरे वर्गों से भिन्न है। यही कारण है कि आज इस वर्ग ने एक अलग स्थान प्राप्त किया है। संपूर्ण मध्यवर्ग के मुताबिक एक सार्वभौमिक परिभाषा कर पाना एक

जटिल कार्य है, क्योंकि इसमें स्तरीकरण की इतनी विभिन्नता है कि एक ओर वे उच्चवर्ग की कक्षा में आते हैं और दूसरी ओर से निम्न वर्ग की। यही वजह है कि मध्यवर्ग की परिभाषा करते हुए विद्वानों ने विशेषताओं तथा उनकी त्रुटियों काभी वर्णन किया है।

ऑक्सफोर्ड इलस्ट्रेटेड डिक्शनरी के अनुसार – "मध्यवर्ग समाज के उच्च और निम्न श्रेणी के बीच का वर्ग है जिसमें व्यावसायिक, व्यापारिक अथवा क्रय-विक्रय करने वाले लोग शामिल होते हैं।"[31] हिंदी साहित्य कोश में मध्यवर्ग की चर्चा करते हुए लिखा है – "मध्यमवर्ग सामन्तवादी व्यवस्था में नहीं पाया जाता, क्योंकि उस समय जमींदार तथा किसान का सीधा सम्बन्ध था, किन्तु पूँजीवादी व्यवस्था ने समाज को इतना जटिल बना दिया है कि एक मध्यवर्ग की भी आवश्यकता हुई जो इस जटिल व्यवस्था के संघटन-सूत्र को सँभाल सके। इस वर्ग में नौकरी-पेशा, शिक्षक, क्लर्क और अन्य साधारण लोग आते हैं। मध्यवर्ग विशेषत: बुद्धप्रधान वर्ग माना गया है और सामाजिक क्रांति के प्राय: समस्त विचारों का सर्जन मध्यवर्ग में होता है।"[32] मध्यवर्ग की विशिष्ट को दर्शाते हुए अरस्तू ने कहा है – "सभी राज्यों में तीन प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं एक वर्ग बहुत धनी है, दूसरा बहुत ही निर्धन है और तीसरे प्रकार के व्यक्ति मध्यम श्रेणी के हैं। इस मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों में कई बातें बहुत अच्छी हैं। अतः मेरी इच्छा है कि मैं अपने नगर के मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों में ही मान जाऊँ।"[33] आर.एच. ग्रेटन ने अपने विचार व्यक्त किए हैं – "मध्यवर्ग का नाम ही समाज के स्तर की ओर संकेत करता है। यह वर्ग आज भी मौजूद है और उसकी अपनी विशिष्टताएँ हैं। यह वर्ग अपनी विशिष्टताओं अथवा गुणों में इतना मिला-जुला है कि इस वर्ग को अन्य वर्गों के मध्य ही माना जाता है।"[34] डॉ.नासिर अहमद खान ने मध्यवर्ग की परिभाषा करते हुए निम्नवर्ग एवं उच्च वर्ग से अलग माना है – "उनके जीवन-निर्वाह के ढंग के आधार पर उच्च और निम्न वर्गों से अलग किया जा सकता है। उनके अपने पूर्वाग्रह, रुचियाँ तथा अरुचियाँ, शिष्टाचार, रीति-रिवाज और आचार-विचार हैं जिन्हें स्पष्ट न होते हुए भी स्पष्ट किया जा सकता है।"[35]

डॉ.बी.बी मिश्रा ने मध्यवर्ग की श्रेणी में आने वाले लोगों की सूची को व्यापकता से प्रस्तुत किया है – "इस वर्ग में सौदागरों, एजेंटों और आधुनिक व्यापारिक फर्मों के मालिक और संचालक सम्मिलित हैं। इनमें से शीर्ष स्थान के वे व्यक्ति सम्मिलित नहीं किए जाते, जिनका सम्बन्ध थोक बिक्री, व्यापार, निर्माण अथवा वित्तीय मामलों से है। वेतन पाने वाले कार्यकर्ता जैसे मैनेजर, निरीक्षक, सुपरवाइज़र और तकनीकी कर्मचारी तथा बैंक उद्योगों एवं अन्य व्यापारिक संस्थानों में बैंकिंग का कार्य करने वाले लोग आते हैं। इनके ओ विभिन्न संस्थाओं में उच्च वेतन पाने वाले अधिकारी, वाणिज्य के चेंम्बरों और व्यापारों के एसोसिएशनों से लेकर राजनीतिक संगठनों, व्यापारिक संघों, दानशील, सांस्कृतिक और शैक्षिक निकायों में कार्य करने वाले लोग मध्य वर्ग के अंतर्गत आते हैं। इनके अतिरिक्त उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश तथा सरकारी सचिवों को छोड़कर सचिवालयों के कर्मचारी भी इसी वर्ग में परिगणित होते हैं। उपयुक्त सरकारी और गैर सरकारी लोगों के अतिरिक्त मुख्य व्यवसायों के अवैतनिक कार्यकर्ता, वकील, डाक्टर, प्रवक्ता और प्राध्यापक, लेखक, पत्रकार, संगीतज्ञ तथा अन्य कलाकार, धार्मिक उपदेशक और पुजारी भी इसी वर्ग के सदस्य होते हैं। इसके अतिरिक्त जमींदारी में लगे हुए वेतन पाने वाले कर्मचारी, विश्वविद्यालय अथवा इसी प्रकार की स्तर की संस्थाओं में पूरे समय कार्य करने वाले वेतनप्राप्त विद्यार्थी, माध्यमिक स्कूलों के उच्च स्तर के कार्यकर्ता, अध्यापक और स्थानीय निकायों के अधिकारी तथा राजनीतिक कार्यकर्ता भी मध्यवर्ग की विस्तृत सीमा में आते हैं।"[36]

उपयुक्त परिभाषाओं को देखते हुए स्पष्ट हो जाता है कि मध्यवर्ग के अंतर्गत विभिन्न आर्थिक स्तरों के लोग समाविष्ट है। यह वर्ग उच्च तथा निम्नवर्ग से अधिक व्यापक, सहदय, प्रेरक तथा अपनी विशेष दुर्बलताओं से प्रभावित होता है।

मध्य वर्ग का उदय नवजागरण के परिणामों से मध्ययुगीन निश्चल, द्विस्तरीय सामाजिक संरचना में विघटन हुआ था। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरुप आर्थिक क्षमता में श्रेष्ठ योग्यता वाला एक नया पूँजीपति वर्ग निकलकर आया जिसमें बड़े-बड़े व्यापारी, मिल-मालिक और

स्वतंत्र व्यवसायी होते हैं। मुद्रा-प्रमुख पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था तथा 'ब्लूकोलर' श्रमजीवी मजदूरों की गिनती बढ़ने लगी थी। मध्यम आर्थिक योग्यता वाले स्वतंत्र व्यवसाइयों, दुकानदारों, अध्यापक, डाक्टर, वकील आदि पेशेवाले बुद्धिजीवी तथा कार्यक्षेत्रो तथा आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर अन्य कर्मचारियों की भी प्रगति होने लगी। वे सब अक्सर शहरों में रहते थे और इसी अर्थ में 'बुर्जुआ' नाम उनके लिए दृढ़ हो गया। यह 'बुर्जुआ' जन समूह अधिकांशतः सामान अभिरुचियाँ व्यक्त करते हैं। उनके बीच अनजाने में ही एक वर्ग उसी क्षण सक्रिय होने लगा। वे सब जब अपने अपने निजी स्वार्थो के लिए एक जूट होने लगे तो समाज में मध्यवर्ग का आकार स्पष्ट दिखाई देने लगा। वे अभिजात वर्ग से सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक दृष्टि से निचले स्तर में है, किन्तु आर्थिक दृष्टि से स्वालंबी होने से निम्नवर्ग से ऊपर है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का विस्तार होने से सामंतवादी भू-व्यवस्था भंग होने लगी और मध्यम श्रेणी के स्वतंत्र किसानों की गिनती भी बढ़ने लगी थी। वर्ग चेतना, आर्थिक क्षमता, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि दृष्टियों से ये भी शहरी बुर्जुआ वर्ग की भाँति ही प्रतीत होते थे। सामान्य शिक्षा के प्रचार-प्रचार में नया मध्यवर्ग प्रमुख प्रेरणा रहा। सांस्कृतिक क्षेत्र में पुरानी रूढ़िवादी परंपरा को नापसंद करता था कहीं ना कहीं नवीनता की मांग करता था। राजनीतिक क्षेत्र में भी इसका प्रबल प्रभाव पड़ता था। फ्रांस, इंग्लैंड जैसे यूरोपियन देशों में यह नया वर्ग बहुत कम समय में अपना प्रभाव डालने में समर्थ हुआ। 17 वीं 18 शताब्दियों में इस मध्यवर्ग के प्रभाव का तीव्र गति से विकास हुआ।

भारतीय मध्य वर्ग का उदय अंग्रेजी शासन के दौरान नवजागरण के परिणाम स्वरुप हुआ था। इसी कारण से इसका इतिहास अति प्राचीन नहीं है। मुगल समराज्य के विघटन के पश्चात ईस्ट इंडिया कंपनी भारत पर अपना आधिपत्य जमाने में कामयाब हो गई थी। यहाँ कारोबार करने आये, मगर राजनीतिक परिस्थितियों ने ऐसी करवट ली कि ये कंपनी कारोबार के बजाय सरकार बन बैठी। भारत देश विभिन्न भाषाओं तथा संस्कृतियों का देश है इसलिए उन्हें अपने शासन की सुविधा के लिए अनेक देसी कर्मचारियों तथा द्वभाषियों की आवश्यकता पड़ी। यही आवश्यकता

को पूर्ण करने के लिए उन्होंने विशिष्ट शिक्षा नीति का आरंभ किया। कंपनी की सत्ता होते ही ईसाई धर्म-प्रचारक पादरी लोगों का भारत में आगमन होने लगा था। धर्म परिवर्तन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से पादरियों ने अंग्रेजी भाषा का प्रचार-प्रसार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विदेशियों के ही प्रयत्नों के कारण मुद्रण कला, पत्रकारिता आदि भी यहाँ विकसित हुई। भारत के अधिक से अधिक शोषण को लक्ष्य में रखकर पहले ईस्ट इंडिया कंपनी और उसके उपरांत अंग्रेजी साम्राज्य ने भारत में यातायात की सुविधाओं की उन्नति के लिए अनेकों प्रयास किए थे। भारतीय रेलवे की शुरुआत तथा उप-भूखंड में एक सफल डाक-सेवा विभाग के स्थापना से देश को कोना-कोना आपसी संपर्क में आ गया। अंग्रेजी भाषा के व्यापक प्रचार के साथ भारत की देशी भाषाओं में भी नवीनीकरण परिलक्षित होने लगा। इस सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिवर्तन का परस्पर घनिष्ठ संबंध रहा है। देश में पूँजीवादी दृढ़मूल होने लगी तो सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन अति आवश्यक हो गया था और इस प्रकार 19 वीं शताब्दी में यहाँ भी मध्यवर्ग समाज उत्पन्न हो गया।

आर्थिक दृष्टिकोण से परखने पर, आय, पेशा तथा सामाजिक प्रतिष्ठा में मध्यवर्ग के लोग हर समय विशेषकर मुगल शासन के समय यहाँ विद्यमान थे। व्यापारी, कर्मचारी, अध्यापक, वैद्य, सैनिक जैसे लोगों का वह 'मध्य वर्ग' विभाग किंतु आधुनिक अर्थ का सामाजिक वर्ग नहीं था। क्योंकि सामाजिक व्यवस्था में आधुनिक मध्यवर्ग के समान प्रभाव डालने की सामर्थ्य उन अल्पसंख्यकों में नहीं थी। भारतीय जाति व्यवस्था की निष्ठुरता भी उस काल में एक नए स्तरीकरण पर प्रतिबंध लगाने के लिए विद्यमान थी। इसलिए अन्य देशों की तुलना में भारतीय मध्यवर्ग डेढ़ सौ वर्षो का ही इतिहास रखता है। अपने उद्भव के समय से यह भारतीय मध्यवर्ग क्रमिक विकास कर रहा है।

मध्ययुगीन सामाजिक संरचना मूल रूप से कृषि पर आधारित भू-व्यवस्था पर अधिष्ठित थी और प्राय: निश्चल (स्टेटिक) भी। उस समय समाज में दो ही वर्ग हुआ करते थे राजा-रहिशो

तथा धनी-जमीदारों एवं बड़े-बड़े व्यापारियों का उच्चवर्ग और श्रमिकों व खेती मजदूरों, गरीबों का निधन निम्नवर्ग। पंडितो पुरोहितों का स्थान उच्च वर्ग के अंतर्गत ही प्रतिष्ठित था। सैनिकों राज-कर्मचारियों, छोटे-छोटे व्यापारी, स्वतंत्र पेशे के अध्यापक, वैद्य आदि का एक तीसरा विभाग भी था जिसके पास मध्य वेद आदि का एक तीसरा विभाग भी था, जिसके पास मध्यम सामाजिक प्रतिष्ठा, मान-सम्मान और आर्थिक सुख-सुविधाएँ होती थी किंतु उसकी संख्या नगण्य थी और सामाजिक व्यवस्था पर कोई प्रभाव डालने में वे असमर्थ थे। इसलिए आधुनिक अर्थ का 'मध्यवर्ग' नाम उस विभाग के लिए सही नहीं है।

भारतीय मध्यवर्ग के विकास में अंग्रेजी शिक्षा के साथ ही पूँजीवादी व्यवस्था का विशेष योगदान रहा है। अन्य पूँजीवादी देशों के मध्यवर्ग से तुलना की जाने पर भारतीय मध्यवर्ग की स्थिति कुछ विशिष्ट है, क्योंकि हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था और सांस्कृतिक क्षेत्र कई दशकों तक विदेशी शासन के शोषण के दबाव में अवरुद्ध पडने से यह आज भी अर्ध विकसित रहा है। फलस्वरुप इस अर्ध विकसित पूंजीवादी व्यवस्था का परिणाम भारतीय मध्यवर्ग पर अपने आधे-अधूरे रूप में पड़ा जिसके कारण भारतीय मध्यवर्ग में नाउम्मीद, असंतुष्टि की भावना अपेक्षाकृत अधिक प्रबल है। जैसा कि हुमायुं काबिर लिखते हैं – " सभी जगह मध्यवर्ग यह अनुभव करने लगा है कि उसका कोई भविष्य नहीं है। भारत में उसकी दशा और भी दयनीय है। पूँजीवाद के विकास ने अन्य देशों में सामाजिक अर्थ-व्यवस्था में उनके लिए स्थान बना दिया है; पर भारत में पूँजीवाद को अंग्रेजों ने राजनीतिक और आर्थिक दबावों के कारण बढ़ने नहीं दिया। इस पर भी, समाज की अन्य श्रेणियों का झुकाव, मध्यवर्ग की अपेक्षाकृत अधिक अच्छी दशा देखकर उसकी ओर बराबर ही रहा। मध्यवर्ग इतना बढ़ा कि मौजूदा आर्थिक स्थिति उस संस्था को सँभाल न सकी।"[37] इस प्रकार देखने से हमें पता चलता है कि भारतीय पूँजीवादी व्यवस्था ने यहाँ के मध्यवर्ग को अत्यधिक प्रभावित किया है।

अंग्रेजी शिक्षा के साथ ही पाश्चात्य संस्कृति ने भी भारतीय मध्यवर्ग को अत्यंत प्रभावित किया है। हुमायुं कबिर लिखते हैं – "नवीन शिक्षित वर्ग प्रमुख रूप से पश्चिमी देशों के व्यक्तियों के विचारों से अपने विचार बनाने लगे। वे किसी न किसी रूप में अंग्रेजों के सम्पर्क के कारण उनके रहन-सहन को भी अपनाने लगे।"[38] पाश्चात्य भाषा, रीति-रिवाज, रहन-सहन का प्रभाव यहाँ की नई पीढ़ी पर पड़ा। यद्यपि राजा राममोहन राय तथा उनके सहयोगी भी अंग्रेजी भाषा तथा उनकी संस्कृति से प्रभावित थे किंतु उनमें भारतीय संस्कृति की जड़े बहुत मजबूत थी। पर राजा राममोहन राय के बाद की पीढ़ी में भारतीय संस्कृति के लिए वैसी आस्था देखने को नहीं मिलती, इसी कारण से वह पश्चिमी सभ्यता की धारा के प्रवाह में बह गये। अंग्रेजो द्वारा, भारतीयों के जीवन में जो संस्कार बैठा दिए गए थे आज भी मध्यवर्ग उससे स्वतंत्र नहीं हो सका है। इस प्रकार भारतीय मध्यवर्ग के विकास में पश्चात संस्कृति का मूल रूप से प्रभाव देखने को मिलता है।

अंग्रेजों के आगमन ने सिर्फ सांस्कृतिक क्षेत्र पर ही अपना प्रभाव नहीं छोड़ा किंतु आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। राजनीतिक क्षेत्र में अंग्रेजों ने अपने शासन के समय अपनी सत्ता के बल पर देश में शोषण की नीति अपनायी जिसके कारण भारतीय कृषि-व्यवस्था को अत्यधिक हानि पहुँची। इस पर के.सी.व्यास का कहना है कि – "भारतीय कृषि के नष्ट -भ्रष्ट होने से गाँवों से अधिक संख्या में लोग नौकरी की आशा में शहरों में आने लगे और इस प्रकार आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तन के साथ एक नया वर्ग (मध्यवर्ग) धीरे-धीरे विकसित होने लगा।"[39] शहरों में आकर नई शिक्षा में पला हुआ एक नया 'बाबूवर्ग' का विकास हुआ जिसे अंग्रेजी शासन की जड़े भारत में मजबूत होती गई। जैसे-जैसे इस 'बाबूवर्ग' की गिनती बढ़ती गई, मध्यवर्ग अपने संपूर्ण अवयवों के साथ बलिष्ठ होता गया। गाँव की नष्ट होती आर्थिक व्यवस्था के कारण ग्रामीण जीवन का एक वर्ग शहर में आकर मजदूरों का जीवन जीने पर बेबस हो गया। अपितु इन्हीं गाँव से आये लोगों में से कुछ लोग शहरों में जाकर दफ्तरों के चपरासी, पल्टन के सिपाही, पुलिसमैन, नौकर, चौकीदार, रसोइयें या छोटी-मोटी फेरी वाले

सौदागर बन गए। इस प्रकार गाँव से शहर में अपना पेट पालने के लिए आए हुए इन भिन्न-भिन्न वर्गों का अपना एक विशिष्ट समुदाय बन गया। यह भी मध्यवर्ग का एक विशेष अंग ही था। इस प्रकार शिक्षित, अर्धशिक्षित और अशिक्षित सभी लोगों की शहरी मध्यवर्ग के लोगों की गिनती में दिनोंदिन वृद्धि होती गयी।

इस नवनिर्मित मध्यवर्ग का मुख्य आधार आर्थिक हैं। आर्थिक दृष्टि से ही इस समाज में भिन्न-भिन्न समुदाय देखने को मिलते हैं। मध्यवर्ग में एक और बेहद गरीब, सीधा-साधा, उदासीन निम्न मध्यवर्ग है और दूसरी तरफ उच्च मध्यवर्ग जो हमेशा उच्चवर्ग की बराबरी करने में लगा रहता है। अपनी इसी विशेषता के कारण मध्यवर्ग के भीतर एक वर्ग विशेष की इच्छा उच्चवर्ग के समक्ष खड़े रहने की महत्वाकांक्षा रहती है और दूसरे वर्ग को अपने आर्थिक अभाव के कारण निम्नवर्ग से समझौता करना पड़ता है।

अन्य देशों की तुलना में भारतीय मध्यवर्ग अधिक संकटों का सामना करता है और आज भी कर रहा है। एक ओर इस वर्ग पर पाश्चात्य शिक्षा, संस्कृति का प्रभाव पड़ा है और दूसरी और ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, कांग्रेस जैसी सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं ने भी इस मध्यमवर्ग को अत्यंत अभिभूत किया है।

अपनी प्रतिकूल आर्थिक परिस्थितियों के साथ ही मध्यमवर्ग राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं से घिरा हुआ है। "संसार भर के आर्थिक संघर्ष ने गहन रूप से नवीन मध्यमवर्ग को भी सामान्य यातना का अंश बना दिया। राष्ट्रीय आय में भारी कमी तथा आवश्यक व्यय-भार को ही स्वीकार करने की दृष्टि से वेतनों में प्राय: कमी की जाने लगी, अनियमित भुगतान रोक दिए गए, पदोन्नतियों को कम किया जाने लगा, कर्मचारियों की संख्या कम की जाने लगी, समय से पहले की पेन्शनें दी जाने लगीं और अनिवार्य रूप से कर्मचारियों को सेवा से मुक्त किया जाने लगा।"[40]

मध्यवर्गीय समाज के मनोवैज्ञानिक दृष्टि का अन्य वर्ग से तुलना करते हुए हुमायुं कबिर कहते हैं – "आधुनिक भारत का सम्भवत: सबसे महत्वपूर्ण तथ्य मध्यवर्ग का असंतुलित फैलाव है। सम्पूर्ण विश्व में मध्यवर्ग के लोग अशान्त, आलोचक और व्यक्तिवादी हैं। ऐसी स्थिति के कारण उनकी आर्थिक स्थिति डाँवाडोल है। वे अनुभव करते हैं कि उन्हें सम्मानपूर्ण स्तर बनाए रखना आवश्यक है, जो प्राय: उनके साधनों की पहुँच के बाहर होता है। लगातार आर्थिक संघर्ष उनके जीवन के समस्त दृष्टिकोण पर प्रभाव डालता रहता है। मध्यवर्ग सन्तुष्ट नहीं रहता और वह प्राय: उद्दण्ड आत्मप्रदर्शनकारी और मुँहफट होता है। अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए वह दूसरों की आलोचना करता है।"[41]

आर्थिक दुर्व्यवस्था के कारण ही मध्यवर्ग के जीवन में अनेकों समस्याएं उत्पन्न होती है। शिक्षा और बेरोजगारी की समस्या ने उसे अनुदार, ईर्ष्यालु, कंजूस बना देती है। उच्चवर्ग का व्यक्ति आर्थिक, सामाजिक रूप से सुरक्षित होता है। निम्नवर्ग का व्यक्ति मेहनत मजूरी कर भाग्य के भरोसे अपना जीवन व्यापन करता है, किंतु दोनों वर्गो के मुकाबले में –"मध्यवर्ग असंतुष्ट और संघर्षप्रिय होता है और दूसरों की आलोचना करना न्यायोचित मानता है।"[42]

दूसरे देशों की भाँति ही अपने बिस्तार के कारण मध्यवर्ग के सामाजिक और आर्थिक आयामों में भी परिवर्तन आया है। हमारे देश की सामाजिक व्यवस्था में भी बदलाव देखने को मिलता है। धीरे-धीरे पुराने मूल्यों का दामन छोड़कर नवीन विचारों का दामन थामा है। इसके फलस्वरुप मध्यवर्ग की नई पीढ़ी ने पुरानी रूढ़िवादी परंपराओं का विद्रोह किया है। आर्थिक, सामाजिक समस्या से उत्पन्न रोजी-रोटी की समस्या ने मध्यमवर्ग को अतिशय स्वार्थी बना दिया। नन्ददुलारे वाजपेयी जी के शब्दों में – "हमारे समाज का नया मध्यवर्ग परिवार की मर्यादा और स्तर कायम रखने तथा रोज़ी कमाने में ही सारी शक्ति लग रहा है। इस वर्ग की राष्ट्रीय चेतना के ह्रास के साथ उसकी नैतिक शक्ति भी बहुत कुछ क्षीण होने लगी है। लोग अपने से ऊँचे स्तर के व्यक्ति को देखते हैं और उसमें किसी प्रकार का चारित्रिक उत्कर्ष, त्याग की भावना तथा अन्य

उच्चादर्श न पाकर स्वयं भी उसी जीवन-शैली को अपनाने को प्रेरित हो रहे हैं।"[43] बदलाव के लिए व्याकुल मध्यवर्ग हताश, विवश, आक्रोश और घुटन में जी रहा है। "हमारा औसत बुद्धिजीवी परायी कृत से अधिक विभ्रान्त है। इसीलिए उनमें धुरी हीनता की विडम्बना आ जाती है, वह न चाहकर भी जीविका के लिए अपनी स्वतन्त्रता बेचता है और एक मिथ्या चेतन ओढ़ना है, वह सत्ता और शासन के भय से अपने विचारों की आस्था छिपाता है। हम जानते है कि आत्म-परायेपन का ऐसा विकृत रूप समृद्ध देशों के बुद्धि जीवियों में नहीं है।"[44]

सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के अतिरिक्त धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों ने भी अपना असर डाला है। धार्मिक मान्यताओं तथा रूढ़िवादी परंपरा का विरोध मध्यवर्ग ने सबसे अधिक किया है। राजनीतिक क्षेत्र में भी जितने आंदोलन हुए हैं उसमें भी मध्यवर्ग की भूमिका प्रधान रही है। जहाँ एक ओर मध्यवर्ग अपनी परेशानियों में उलझा हुआ है। वहीं दूसरी ओर समाज को जीवन के प्रति आस्था और विश्वास को ध्वनि भी इसने दिया है। आज मध्यवर्ग के लोग आर्थिक प्रतिस्पर्धाओं के कारण कई व्यंग, कटाक्ष, लांछनो की अवहेलना सहन करते हुए भी अपने नैतिक आदर्शों के दम पर पूँजीपतियों के बरबर षडयंत्रों से टक्कर ले रहा है।

मध्यवर्ग की उल्लेखित समस्याओं और सफलताओं के साथ ही उनकी अपनी दुर्बलताएँ भी हैं। जिसके कारण यह वर्ग अन्य वर्ग से अधिक विवश है। मध्यवर्ग की सबसे बड़ी दुर्बलता है कि वह कुल की मर्यादा को निभाने के लिए अनेकों प्रदर्शन करता है और वह प्रदर्शन उसकी आर्थिक स्थिति से मेंल नहीं खाता तथा मानसिक संघर्ष का कारण बन जाता है। अपनी स्थिति से बढ़कर दिखावा करना उनके इसी स्वभाव ने मध्यवर्ग को खोखला बना दिया है। कुल की मान-मर्यादा की हिफाजत करना मध्यवर्ग की सबसे बड़ी कमजोरी है। उसे हमेशा संदिग्ध कुलीनता और रूढ़िग्रस्त, दरिद्र, मर्यादाओं से सतत संघर्ष करना पड़ता है। मध्यवर्ग का व्यक्ति हमेशा उच्चवर्ग तक पहुचने की लालशा रखता है किंतु आर्थिक अभाव के कारण वह मात्र प्रदर्शन ही कर पाते हैं। धन के अभाव में वह कर्ज ले लेकर वह अपनी झूठी शान बनाये रखना है।

परिणामस्वरुप अंदर ही अंदर यह वर्ग खोखला होता जा रहा है और कई प्रकार की आर्थिक कठिनाइयों से विवश होकर मानसिक कुंठाओं से ग्रस्त होता हुआ अपना अस्तित्व खोता जा रहा है।

मध्यवर्ग का व्यक्ति महत्वाकांक्षी होने के कारण आत्मकेंद्रित तथा कल्पनाप्रिय भी होता है। अपने जीवन की सच्चाई को अभिनय द्वारा छुपाने की कोशिश करता है। मध्यवर्ग के व्यक्ति अधिक संवेदनशील होते हैं। इसमें दो तरह के लोग देखने को मिलते हैं। एक जो अपनी रूढ़िवादी परंपरा, पुराने मूल्यों को किसी भी कीमत पर जीवित रखना चाहता है, और दूसरा जो हर प्रकार के सुधारो, मान्यताओं को प्रतिष्ठित करने से सतत प्रयत्नशील रहता है। इस दूसरे वर्ग के कारण ही निरंतर सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना का विकास होता रहता है। इसे हम सरलता से प्रगतिशील अंग कह सकते हैं। भारत के नव विकसित मध्यवर्ग ने प्राचीन रूढ़िवादी जाति-व्यवस्था, सती-प्रथा, विधवा का विचित्र स्थिति तथा अनमेल विवाह के खिलाफ आवाज उठाई, धर्म और विवेक के समन्वय द्वारा नवीन लोकतांत्रिक आदर्शों के अनुकूल भारतीय समाज का पुर्नगठित करने का सर्वप्रथम प्रयत्न इसी वर्ग ने किया जिसका रूप हम समकालीन कथा-साहित्य में निरंतर देखते हैं।

बीसवीं शताब्दी के अंग्रेजी शिक्षा पाश्चात्य संस्कृति को अपनाकर नये प्रगतिशील तत्वों को ग्रहण किया और प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात भारतीय मध्यवर्ग व्यक्तिवादी विचारधारा सशक्त होने लगी। द्वितीय महायुद्ध के निरंतर बदलते वैश्विक परिदृश्य एवं भारतीय संदर्भ में स्वतंत्रता के बाद की बढ़ती हुई महंगाई, बेरोजगारी, बेकरी की समस्या के कारण मध्यवर्ग का विद्रोह स्वर अधिक उग्र होने लगा। जिसे नये युग के कथा-साहित्यकारों ने अपने कथा साहित्य में विभिन्न प्रकार से दर्शाया है।

आधुनिकता की जो लहर आई उसमें केवल पुरुष ही नहीं सदियों से शोषित, दलित, पीड़ित और वेदनाग्रस्त भारतीय नारी भी विद्रोहिणी बनकर सामने आई। शिक्षा एवं सामाजिक

सुधार की संकल्प लिए मध्यवर्ग की नारी-समूह भी जीवन के क्षेत्रों में प्रगतिशील बनी। विधवा-विवाह का समर्थन, दहेज प्रथा, अनमेल विभाव का विरोध, वेश्या-प्रथा का खात्मा से भारत में नये विचारों से गौरावान्वित शिक्षित नारी और पुरुष प्रयत्नशील दिखाई देती हैं। नये नारी-वर्ग ने पाश्चात्य नारी के संपर्क के कारण तुच्छ होने का भाव ओझल होने लगा और दिनोंदिन उनमें समानाअधिकार की भावना दृढ़ होती जा रही है। इस प्रकार न सिर्फ पुरुष के चगुल से निकलने में समर्थ हुई, किंतु युगों की आर्थिक एवं सामाजिक दासता की श्रृंखला को भी कई हद तक तोड़ा है। इस प्रकार नये विचारों से युक्त मध्यवर्गीय समाज के पुरुषों के साथ नारियों ने भी कदम से कदम मिलाकर नव निर्माण की दिशा में सतत आगे बढ़ती जा रही है, और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर दिखाई दे रही है।

मध्यवर्ग एक तरफ सतत संघर्ष और दूसरी तरह समाज में सुधार की कामना इस वर्ग का ध्येय है। वर्ग संघर्ष को मिटाने तथा समानता की कामना भी सदैव यही वर्ग करता है। परंतु वर्ग संघर्ष सदैव रहा है और आज भी है। यहाँ तक की वर्ग संघर्ष को प्रगति का प्रेरक माना जाता है। बिना वर्ग संघर्ष के सामाजिक उन्नति असंभव है, जितना समाज का शाषित वर्ग, शोषक वर्ग की ओर विद्रोह की भावना से आगे बढ़ेगा, उतनी ही शाषित वर्ग उन्नति करेगा। "जितना ही अधिक वर्ग संघर्ष होगा, उतना ही पुराने मूल्यों के बीच नये मूल्य (वैल्यूज़) स्थापित होंगे और इस प्रकार समाज की व्यवस्था में प्रगति आएगी।"[45] समाज की प्रगति के लिए वर्ग संघर्ष को समाप्त करके वर्ग हीन समाज का स्वप्न देखने वाला यही मध्यवर्ग है। अपने युग की विभिन्न समस्याओं से लड़ता रहा है, और हिंदी के कथा साहित्य में भी अपने युग की समस्या का अध्ययन विस्तार से प्रस्तुत किया है।

निम्नवर्ग

हमारे समाज में वर्ग विभाजन स्पट रुप से देखने को मिलता है। एक तरफ उच्च वर्ग है जिसके पास परिपूर्ण धन-संपत्ति है, और उत्पादन के सभी साधन है वहीं दूसरी तरफ निम्न वर्ग है

जिसके पास ना कोई धन है और ना ही उत्पादन पर उसका कोई अधिकार है वह सिर्फ अपने श्रम पर निर्भर है। वर्तमान में निम्न वर्ग के लिए विभिन्न नाम प्रचलित हुए हैं जैसे शोषित वर्ग, श्रमिक वर्ग, विपन्न वर्ग, दरिद्र वर्ग , मजदूर वर्ग, सर्वहारा वर्ग आदि नामो से जाना जाता है और सरकारी, प्रशासनिक भाषा में 'गरीबी रेखा' शब्द का प्रयोग किया जाता हैं। निम्नवर्ग का सीधा संबंध व्यक्ति की कमाई और उसकी आमदनी से है। इसके अलावा इनका संबंध विपन्नता, गरीबी और इनकी जरुरतों से है। वह व्यक्ति गरीब हैं जो अपनी बुनियादी आवश्यकताएं को भी पर्ण ना कर सके जैसे खाने के लिए भोजन, पहनने के लिए वस्त्र, रहने के लिए आवास और शिक्षा, पानी, बिजली, चिकित्सालय जैसी सुविधाएं भी इन्हें नहीं मिल पाती। इन्हें एक और गरीबी की मार सहनी पड़ती है तो दूसरी और समाज के शोषण का शिकार होना पड़ता है।

निन्म वर्ग, भारत के सबसे अधिक प्रतिशत व्यक्ति इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं। यह मेहनत मजदूरी करने वालों का वर्ग हैं। अपनी जिजीविषा चलाने के लिए इनके पास श्रम के अतिरिक्त कोई दूसरा साधन नहीं होता। इसलिए ये लोग ठेला, रिक्सा, टेक्सी चलाकर, राज - मजदूरी, खेती तथा मिलों में मजदूरी करते हैं। इनकी स्थिति पर चर्चा करते हुए रवींद्रनाथ मुखर्जी लिखतें है – "भारत में आर्थिक तौर पर इनकी स्थिति बहुत ही गिरी हुई है। इन्हें ना तो उचित भोजन मिलता है, न पूरे कपड़े और न ही समुचित निवास। इस वर्ग के असंख्य सदस्य गन्दी बस्तियों में रहते हैं। रुखा-सुखा कभी पेट भर तो कभी आधा पेट खाते हैं तथा किसी तरह से तन को उल्टे-सीधे कपड़ों में ढककर सभ्यता खिल्लियां उड़ाते हैं; पर इसी वर्ग के सदस्य अपने खून-पसीने को एक करके उत्पादन कार्य करते हैं, उत्पादित वस्तुओं को ढोते और लादते हैं, यातायात और संचार के साधनों को ठीक रखते हैं तथा मकान व गोदामों को बनाकर माल और मालिक दोनों को सुरक्षित रखते हैं।"[46]

16 वीं सादी के आरंभ में वैज्ञानिक प्रगति होने से उत्पादन के नये-नये साधनों के नव निर्माण से उत्पादन व्यवस्था के संबंधों में विरोध उदित हुआ। नए साधनों, मशीनों की खोज एवं

उद्योगों की स्थापना से पूंजीवादी युग का आरंभ हुआ, जो आज तक जीवित है। इस व्यवस्था में एक तरफ उद्योग के मालिक सम्पन्न वर्ग और दूसरी तरफ अपने श्रम को बेबसी में नष्ट होती मजदूरी के लिए बेचने को विवश मजबूर, साधन ही 'शोषित वर्ग' दो विशेष वर्ग बन गये। कार्लमार्क्स ने इसी बेबस, असहाय, साधन हीन वर्ग को 'सर्वहारा वर्ग' कहा है। ये लोग अपना जीवन व्यतीत करने के लिए अपने श्रम को बेचने पर मजबूर होता है क्योंकि इसके सिवाय इनके पास उत्पादन का कोई ओर साधन नहीं होता, ना ही उत्पादन के साधनों पर इनका कोई हक होता है।

निम्नवर्ग के विषय पर विचार करने से मालूम पड़ता हैं कि " 18 वीं शताब्दी में जो औद्योगिक क्रान्ति यूरोप में आयी थी, अंग्रेजी उपनिवेशवाद के परिणामस्वरुप यह क्रान्ति हमारे देश में भी आयी। यहां कल-कारखाने लगे, उद्योग-धंधे चले, छपाई मशीन आई और संचार साधनों का शुभारम्भ हुआ। यह लगा कि इस देश में भी औद्योगिक समाज आ गया है। जहां एक ओर ग्रामीण समाज में नए वर्ग उभर रहे थे, वहीं बड़े-बड़े शहरों में जहां उद्योग धन्धे चल पड़े थे, नए वर्ग उभरकर आए। ये वर्ग औद्योगिक समाज की उपज थे।"[47] उद्योग धंधों का विस्तार होने के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर भी उसका असर हुआ "निर्धन किसान सामान्य किसान होते हैं जिसके पास इतनी भूमि नहीं हैं कि ये अपनी आजीविका चला सके, इसलिए ये बंटईदार खेती करते हैं और समय आने पर अपनी आय को बढ़ाने के लिए दूसरों के खेतों पर मजदूरी करते हैं। कृषक जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग निर्धन किसानों का है। यह रुचिकर बात है कि कृषि भूमि का एक बहुत बड़ा भाग बहुत थोड़े धनी किसानों के हाथों में है और बहुत थोड़ा भाग बहुत निर्धन किसानों के हाथ में है। इसका मतलब हुआ कि कृषक वर्ग व्यवस्था में बहुत थोड़े लोग उच्च वर्ग में है जबकि बहुत अधिक लोग निम्न वर्ग में हैं।"[48] उद्योगीकरण के कारण खेतिहार मजदूर रोजगार की तलाश में शहर की ओर पलायन करने लगे। "देखा जाए तो शहरों का श्रमिक वर्ग निर्धन किसानों का है जो गांव छोड़कर आ गए हैं, परेशानी दस्तकारों की है जो ग्रामीण

दस्तकारी को छोड़कर शहर आ गए हैं।"[49] लेकिन शहर और गांव के रहन-सहन काम-धंधों में अंतर होता है गांव में लोग खेती पर आधारित होते हैं किंतु शहरों में उद्योग-धंधों पर निर्भर रहना पड़ता है। खेतिहार मजदूर दूसरों के यहां मजदूरी करते थे बदले में उन्हें नकद, अनाज या वस्तु मिल जाती थी, यही मजदूर गरीब वर्ग या निम्नवर्ग कहा जाता है।

वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रगति होने से पूंजीवाद के लिए अनेकों द्वार खुल गए। वहीं छोटे-छोटे व्यापारी शिल्पकारों और ग्रामीण क्षेत्र के बढ़ई, कुम्हार, लोहार, नाई आदि दस्तकार सभी बेरोजगार हो गए और शहर की ओर रुख करने लगे वे शहरों में जाकर मिलो, उद्योगों में मजदूरी के रूप में काम करने लगे, खेतिहर मजदूर भी इसी शहर में आकर इसी कारखाने में ही अपने उज्जवल भविष्य की कल्पना करने लगे। इस प्रकार पता चलता है कि "शहरों का श्रमिक वर्ग निर्धन किसानों का है जो गांव छोड़कर शहर आ गए। परेशानी दस्तकारों की है जो ग्रामीण दस्तकारी छोड़कर शहर आ गए।"[50] इस प्रकार पूंजीवादी व्यवस्था में शोषक वर्ग द्वारा शोषित वर्ग का शोषण निरंतर किया जाता रहा। इसी कारण समाज में वर्ग विभाजन स्पष्ट दिखाई देता है।

निम्नवर्ग की अवधारणा कर पाना मुश्किल कार्य है। इस बदलती परिस्थितियों में रोजगार की तकनीक एवं तरीकों में परिवर्तन आया है वैज्ञानिक युग में नए-नए व्यवसाय और व्यापार का उद्भव हुआ इस वजह से पहले के मुताबिक लोगों की कम से कम जरुरतों का निर्णय भी नए परिवेश के अनुरूप किया जाने लगा। जिनकी गिनती निम्न मध्य वर्ग में हुआ करती थी किंतु बढ़ती महंगाई के कारण उन्हें निम्न के अंतर्गत गीना जाने लगा, इस कमर तोड़ महंगाई में मध्यवर्ग की स्थिति डामाडोल हो गई, जिससे उनकी स्थिति भी निम्नवर्ग जैसी हो गई है। इस विषय में अमर्त्य सेन कहते हैं कि "अभावग्रस्तता के अनेक रूप होते हैं: आर्थिक गरीबी, निरक्षरता, राजनीतिक, शक्तिहीनता, स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव आदि। विषमता के इन आयामों के प्रभाव सदा ही एक जैसे नहीं होते उनमें (सहभागिता नहीं होती) इनके अनुसार निर्धारित होने वाली सामयिक क्रमिकता से भारी अन्तर हो सकते हैं। आमतौर पर विद्वान लोग केवल आय की गरीबी

को ही सभी अभावों का प्रतीक मान लेते हैं , पर यह बहुत भ्रामक हो सकता है। यही नहीं गम्भीर अभावग्रस्तता के उजागर होने में अनेक सशक्त लक्षण संयुक्त रूप से विद्यमान दिखाई देते हैं। इसका कारण यही है कि ये दुर्बलताएँ प्राय: एक दूसरे को और बढ़ा-चढ़ा देती हैं। साथ ही ये एक साथ पराकाष्ठा की ओर अग्रसर होती हैं और समाज को 'साधन सम्पन्न' और पूर्णत: विपन्न वर्गों में विभाजित कर डालती हैं। सैद्धान्तिक स्तर पर विभिन्न प्रकार के अभावों में भले ही अन्तर नजर आएँ, पर इसके कारण उनमें व्यवहारिक सहगामिता की सम्भावना पर आँच नहीं आती और इसी से ये जाने-पहचाने वर्ग-विभाजन विश्लेषण की विभाजन रेखाओं के निर्धारक बन जाते हैं।"[51]

निम्नवर्ग पर विचार करते हुए हम कह सकते हैं कि निम्नवर्ग के अंतर्गत समाज को उन लोगों का सामावेश किया जाता है "जो सामाजिक-आर्थिक सुविधाओं से वंचित, शोषित एवं पिछड़ा हुआ हो । इन मापदण्डों के आधार पर अनुसूचित-जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों, लघु सीमान्त कृषकों, भूमिहीन मजदूरों, बंधुआ मजदूरों एवं परंपरागत कारीगरों को कमजोर वर्ग के अंतर्गत माना गया है।"[52] समाज का वह वर्ग जो विभिन्न प्रकार से निरंतर अभाव में अपने जीवन का निर्वाह करता है, जो अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए, अपने श्रम को जरिया बनाता है यह आर्थिक दृष्टि से सबसे कमजोर वर्ग है और इनका शोषण भी सबसे अधिक होता है। न्यूनतम में अपना जीवन व्यापन करने के कारण सभ्य समाज से कटा हुआ महसूस करता है। उनका पूरा जीवन अर्थोपार्जन तथा मेहनत मजदूरी में गुजर जाता है। "वर्ग विश्लेषण का मूल और सारतत्त्व यही है कि अक्सर गरीब ही निरीक्षण भी होते हैं वही पैसे-पैसे के लिए कमरतोड़ मेहनत करने को बाध्य रहते हैं, वहीं राजनीतिक दृष्टि से प्रभावहीन हैं, उन्हीं को सामाजिक – आर्थिक सुअवसर नहीं मिल पाते और उन्हीं के साथ पुलिस भी बर्बरतापूर्ण दुर्व्यवहार करती है। 'सम्पन्न' और 'विपन्न' की यह विभाजन-रेखा कोई सैद्धान्तिक अत्यक्ति मात्रा नहीं है, यह तो समस्या के निदान और विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण घटक है और हमारा ध्यान उन विभाजकों की ओर आकर्षित करती है जो हमारे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चिन्तक

का निर्माण करते हैं। अभाव ग्रस्तताओं की यह सहभागिता विषमता और गैर बराबरी के स्रोत के रूप में वर्ग-विभाजन के निर्णायक महत्व को और परिवर्धित कर देती है।"[53]

शोषित वर्ग की सामाजिक स्थिति बेहद कारुणिक है। एक ओर इन्हें संपन्न वर्ग का तिरस्कार सहना पड़ता है वहीं दूसरी ओर आर्थिक मजबूरी के कारण प्रतिकूल हालातों का सामना करना पड़ता है गरीब व्यक्ति चाहे गाँव का हो या शहर का दोनों की स्थिति में विशेष अंतर नहीं होता। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के कारण सामाजिक आर्थिक विकास तेजी से हुआ। इसका लाभ सबसे अधिक संपन्न वर्ग के उद्योगपतियों साहूकारों, व्यापारियों को हुआ। गाँव में भी बड़े-बड़े जमींदारों को इसका भरपूर लाभ मिला। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरुप शहरों में कारखानों, उद्योग-धंधों की स्थापना से ग्रामीण नवयुवक रोजगार की तलाश में शहर की ओर पलायन करने लगे। गाँव के जमींदार तो इनका शोषण करते थे, किंतु शहर में भी इनका शोषण कई तरह से होने लगा। इनकी स्थिति शहर एवं गाँव हर जगह ही विपरीत रही है।

औद्योगिक क्रांति के फलस्वरुप ग्रामीण व्यवस्था पर प्रहार किया गया। यहां के कृषि, कुटिल उद्योग तथा दस्तकारी छिन्न होने लगी गाँव के छोटे-छोटे किसान, खेतिहार मजदूर जो निम्न मध्यवर्गीय तथा मध्यवर्गीय समाज के थे, लाचार होकर शहर जाने को मजबूर हुए। "इन मजदूरों में अधिकांश अकुशल और नए युवा मजदूर थे जो कर्ज के भारी बोझ से दबे हुए आज भी पारिवारिक सम्बन्धों और जमीन के छोटे से टुकड़े के मोहपाश में बँधे थे। आधुनिक भारत के मजदूर, सम्पत्ति से बेदखल किए गए दस्तकारों की कतारों से नहीं आए थे, बल्कि वे किसानों के परिवारों से आए थे। भारतीय दस्तकार समुदाय को उजाड़ दिया गया, उनको पुनः भूमि पर निर्भर होने के लिए विवश कर दिया गया। वे दो-तीन पीढ़ियों तक वहीं ग्रामीण इलाकों में रहे और आधुनिक भारत निर्माण के बाद शहरों में आए। इस प्रकार भारत के औद्योगिक विकास के सामान्य मार्ग में अवरोध उत्पन्न किए गए।"[54]

औद्योगिक क्रांति के कारण 'आधुनिक मजदूर वर्ग, का निर्माण हुआ। जो पूरी तरह से मजदूर था, नाही किसी छोटी-मोटी संपत्ति का स्वामी था। इनकी परिस्थिति अजीब थी एक ओर यह सामाजिक आडंबरों जात-पात, ऊँच-नीच से ऊपर उठाना चाहता था, दूसरी ओर किसानी तथा दस्तकारी के कामो को अपनी संकुचित मनोवृत्ति के कारण उसे छोड़ना नही चाहता था। इस प्रकार उनका जीवन निर्वाह भी अपने तरीके से चलने लगा।

निम्नवर्गीय लोगों का पारिवारिक जीवन अत्यंत जटिल होता है। न हीं उन्हें कोई सुख-सुविधा मिल पाती है, न ही रहने लायक मकान मिल पाता है जहां वे अपने परिवार के साथ सुख व संतोषजनक जीवन बिता सके। आर्थिक विपन्नता के कारण उन्हें छोटे-छोटे कमरों में या झुग्गियों में सह परिवार विवशता वश रहना पड़ता है। दिन-रात मेहनत मजदूरी के बावजूद किसी न किसी आपत्तियां उन्हें घेरे रहती है। इनका पूरा जीवन बस दो वक्त की 'रोटी' जुटाने में गुजर जाता है, इनके पास दूसरा कोई और साधन न होने के कारण विपरीत परिस्थितियों को हताश होकर अपना लेते हैं, कि सायद यह दुनिया ही ऐसी हैं इस पर चर्चा करते हुए अमृतराय जी कहते हैं कि "जिसमें वह निरुपाय फिरता रहता है, ताकि अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट पाल सके, बस, और कुछ नहीं चाहिए, इत्यालम् ! कला संस्कृति से उसका इतना ही नाता है कि जब-जब बंबइया फिल्म देख लेता है जो उसके घाव पर मरहम भले न रक्खे, थोड़ी देर को एक ठंडा फाहा जरूर रख देती है, आँखों में कुछ रंग-बिरंगे सपने जरूर आँज देती है, यथार्थ की झुलसा देने वाली गर्मी से भागकर थोड़ी देर तरी का मजा जरूर पा लेने देती है - शुद्ध एस्केप फिल्म। भागो, भागो, कहीं भागो, इस दिन-रात की हाय-हाय से। जी बहला लो, थोड़ी देर को, जैसे-तैसे, और फिर जुत जाओ अपने इस कोल्हू में (और कोई तेल निकले न - निकले अपना तेल निकल ही जा आता है!) और मालिक जो रुखा-सुखा डाल दे उसी में खुश रहो।"[55] इस विपरीत परिस्थितियों को जो व्यक्ति सह जाता है, वह व्यक्ति किसी न किसी तरह दु:ख, तकलीफों को सहते हुए अपना जीवन बिता लेता है, लेकिन कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो इन सब तकलीफों को झेल नहीं पाते

और दु:ख, हताशा में खुदकुशी जैसे भयानक कदम उठा लेते हैं। यह एक भीषण समस्या है कि "कोई दिन ना जाता होगा की आत्महत्या से दो-चार लोग ना मरते हों, कोई जहर खाकर, कोई फाँसी लगाकर, कोई रेल की पटरी पर सोकर, कोई कुएँ में कूदकर। अक्सर तो पूरे के पूरे कुनबे का सफाया हो जाता है।"[56]

ऊपर जिन विपदाओं की चर्चा की गई है उन परेशानियों से संघर्ष करने वाला गरीब व्यक्ति या तो दिशाहीन होकर जीवन बिताता है या फिर नशे में अपनी सारी विपत्तियों का समाधान ढूँढने लगता है। कारण यह है कि "वर्ग व्यवस्था में इसका सबसे नीचे स्थान है। इसमें मजदूरी करने वाले, फैक्ट्रियों उद्योगों, खानों, मशीनों, आदि पर काम करने वाले श्रमिक आते हैं जो शारीरिक श्रम के आधार पर जीवन यापन करते हैं। यह वर्ग भी रूढ़िवादी एवं धर्म में विश्वास करने वाला है, इसके अधिकांश व्यक्ति अशिक्षित होते हैं। वैयक्तिक विघटन, शराबवृत्ति एवं पारिवारिक संघर्ष इस वर्ग में अधिक पाए जाते हैं। इनकी आय बहुत कम है और ये अपनी आय का अधिकांश भाग जीवन की आवश्यकताओं को जुटाने में ही खर्च करते हैं।"[57] इसके बावजूद उनकी प्राथमिक ज़रूरतें पूरी नहीं हो पाती, भर पेट खाना भी इन्हें प्राप्त नहीं हो पाता। इनके बाल बच्चे कुपोषण का शिकार हो जाते हैं। जिसके कारण यह कई बीमारियों की चपेट में आ जाते हैं। इस विषय पर 'नई दुनिया' समाचार पत्र में लिखा गया है कि "जिन खाद्य सुरक्षा बिल को लेकर सरकार इतनी गंभीर है और विपक्ष चाहकर भी सरकार की महत्वाकांक्षी योजना को रोक नहीं पा रहा है, क्या वह असल में अपने मकसद में कामयाब हो पाएगी। क्या वाकई उन लोगों तक खाना पहुँच पाएगा जिन्हें इनकी सबसे ज्यादा जरूरत है। इन आंकड़ों को देख लीजिए आप खाद्य सुरक्षा की बात तो छोड़िए आपको अपना निवाला लेना भी मुश्किल लगने लगेगा।"[58] नई दुनिया द्वारा बताये गये आंकड़े हमें भीतर से झकझोर के रख देतें हैं। सरकार को इसके लिए ठोस से ठोस कदम उठाने चाहिए। हमारे देश में भुखमरी की समस्या एक जटिल समस्या है। भारत में कुछ ऐसे क्षेत्र भी हैं जहां के लोगों को बार-बार भुखमरी जैसी समस्या से गुजरना पड़ता है।

निम्नवर्ग के जो बच्चे होते हैं उनका जीवन भी इतना दयनिय होता है कि यह उच्च एवं उच्च मध्य वर्ग के लोगों के घरों के पीछे पड़े कचरे के ढ़ेरो में से कबाड़े को निकालने में पूरा दिन बिता देते हैं, ऊपर से उनका तिरस्कार भी सहन कहते हैं उन संपन्न परिवार के लोगों से इनकी परिस्थितियों से " मतलब भी क्या इन कोढ़ के चकत्तों से, उनकी तो अपनी अलग ही बसन्ती दुनिया है, राग रंग में डूबी हुई । उन्हें क्या पता जाड़ा - गर्मी - बरसात खुले आसमान के नीचे या बहुत हुआ तो छोटी-सी एक घास-फूस की टपरिया खड़ी करके उसमें रहना कैसा होता है जो सर्दी से रक्षा करती है न गर्मी से और न आँधी-पानी से, जहाँ बच्चे नंगे घूमते हैं जवान घरेलू लड़कियाँ एक ही फटी हुई लुगड़ी में, जिससे उनका तन-बदन भी ठीक से नहीं ढँकता, साल के साल काट देती हैं । दो अलग दुनिया है दोनों जो एक-दूसरे के लिए बिलकुल अजनबी हैं । उनके बीच खाई नहीं एक आदिगन्त महासागर है जिसका कहीं ओर-छोर नहीं है ।"[59]

कुपोषण का शिकार नारी शारीरिक रूप से बहुत कमजोर होते हैं, और शिक्षा के अभाव के कारण वे साल दर साल बच्चों को जन्म देती है । इसका वह इसका विरोध नहीं कर पाती, वे अपने आप को शारीरिक रूप से क्षति पहुँचती हैं । लेकिन शिक्षित महिलाएं इसका पुरजोंर विरोध करती हैं, परिवार नियोजन की जानकारी उपलब्ध करवाती हैं, वह माँ बनना है या नहीं इसका फैसला खुद करती हैं । इतना ही नहीं अब पारिवारिक निर्णय में भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने लगी है ।

आर्थिक विपन्नता का असर निम्नवर्गीय नारी पर अत्यधिक पड़ता है । वे पहले ही शारीरिक रूप से दुर्लभ होती है उसे पर उन पर दोहरी जिम्मेदारी होती है, घरेलू, काम-काज, बच्चों की देख-रेख और साथ ही उन्हें आर्थोपार्जन के लिए बाहर जाकर मजदूरी करनी पड़ती है । फलतः उनकी जिंदगी जहन्नुम बन जाती है । श्रमिक नेता बी.शिवा राव ने मुंबई की गरीब बस्तियों के नाराकीय आवासीय परिस्थितियों को उजागर किया है, उन्होंने इन बस्तियों में रहने वाली मजदूर महिलाओं के स्वास्थ्य संबंधी जाँच करने वाली डॉक्टर के प्रत्यक्ष ज्ञान को प्रस्तुत किया है । "

एक चाल की... दूसरी मंजिल पर 15×12 फीट के कमरे में 6 परिवार रहते थे। 6 अलग-अलग अंगीठियों का जलना इस बात का प्रमाण था। जाँच करने पर पता चला कि उन कमरे में पुरुष, महिला और बच्चों को मिलाकर कुल 30 लोग रहते थे। छत से नीचे बाँस लटके थे जिन पर रात के समय कपड़ा डाल कर परिवारों के लिए अलग-अलग स्थान बनाया जाता था। इन सबके बीच छह महिलाओं में से तीन को शीघ्र ही प्रसव होने वाला था। तीनों महिलाओं ने मुंबई में ही प्रसव होने की बात बताई। मैं जिस नर्स के साथ गई थी जब मैंने उससे पूछा कि यह उस कमरे में पर्दे की व्यवस्था किस प्रकार करेगी। मुझे 4 × 3 फिट की जगह दिखाई गई जिसे पर्दा डाल कर प्रसव के लिए प्रयोग किया जाता था। छह अंगीठियों के जलने से रात के समय उस कमरे का वातावरण धुएँ से भर जाता था। यह वातावरण वास्तव में गर्भवती महिला और नवजात शिशु दोनों को निश्चित रूप से शारीरिक रूप से विकलांग बना देगा। मैं इसी प्रकार के अनेक कमरों को देखा।"[60]

ऐसे घुटन भरे वातावरण में रहने को मजबूर यह लोग इसी गन्दी बस्तियों में रहते-रहते अपना पूरा जीवन बिता देते हैं और उनके जन्में बच्चे का आगामी भविष्य क्या होगा यह हम खुद समझ सकते हैं यह सोच कर भी रूह कांप जाती है। लेकिन यह निम्नवर्ग की वास्तविकता को बयान करती है इन्हें पीढ़ी दर पीढ़ी जीव-जंतुओं की भांति नाराकीय जीवन जीने को विवश है। सरकार इनको स्वास्थ्य सेवाओं का ठीक से लाभ उपलब्ध नहीं करवा पाती, और उसमें भी जो सरकारी अस्पताल इनके लिए बनवाए गए हैं उसमें हमेशा नर्स और डॉक्टरों की कमी रहती है।

निम्नवर्गीय समाज के लोगों की आर्थिक स्थिति आति असंतोष जनक है। आर्थिक दरिद्रता के कारण समाज में इनका अस्तित्व निराशाजनक है। निम्नवर्ग के लोग अपना पूरा जीवन सिर्फ मजदूरी करने तथा अपनी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने में लगा देते हैं। जनसंख्या की दृष्टि से इनकी संख्या अधिक है, और सामाजिक सम्मान नहीं मात्र है। आर्थिक अभावों के कारण यह अन्य कई सुविधाओं से वंचित रह जाता है इन विपरीत परिस्थितियों के कारण ही अपने आप को समाज से अलग-थलग समझने लगता है और समाज भी उनके प्रति कोई सहानुभूति नहीं रखता।

इस विषय पर अर्थशास्त्री प्रोफेसर 'दिनकर केशव भाकरे' लिखते हैं "कोई स्वीकार करें अथवा न करें, यह एक कठोर सच्चाई है कि आज सखी, सम्माननीय जीवन का आधार है पैसा। इसलिए विचार का मुख्य विषय यही है सुखी सम्माननीय जीवन यापन के लिए जितना पैसा जरूरी है, वह अर्जित करने की ऐसी कौन सी व्यवस्था हो सकती है, जिसमें व्यक्ति को अपने ईमान को विनिमय का साधन न बनाना पड़े। इस लिहाज से अर्थ व्यवस्था की ओर देखें तो समझ में आता है कि आर्थिक गतिविधियों से संलग्न कुल लोगों में 90 प्रतिशत लोग ऐसे हैं जो आर्थिक गतिविधियों में लगी हुई कुल पूँजी में से 10 प्रतिशत से भी कम पूँजी में ही अपना काम चला लेते हैं, जबकि शेष 10 प्रतिशत संख्या ऐसी है जिसे कुल लगी हुई पूँजी का 90 प्रतिशत भी कम पड़ रहा है। यह जो 90 प्रतिशत संख्या का निम्न वर्ग है। वह अपनी अल्प सी पूँजी में से जो मुनाफा कमाता है, उसे अर्थ व्यवस्था में योगदान के नजरिए से देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह क्षेत्र ही अर्थ व्यवस्था का आधार है। दुर्भाग्य से विकृत सभ्यताजन्य सोच के परिणामस्वरुप श्रम की ओर देखने का शासन व्यवस्था और समाज का भी नजरिया अत्यन्त ही तिरस्कारयुक्त एवं अपमान जनक हो गया है।"[61]

हमारे देश की अर्थव्यवस्था ही इस प्रकार की है कि अमीर, आदमी और अमीर होता जा रहा है। गरीब आदमी और गरीब। अर्थव्यवस्था में बैठे प्रतिनिधि भी इसी पूंजीपतियों को ही आर्थिक रूप से मजबूत बनाने में लगा हुआ है। फलस्वरुप "मुट्ठी भर बड़े पूँजीपतियों के हाथ में देश की अस्सी-नब्बे प्रतिशत सम्पत्ति केन्द्रित हो गई है। (जिसमें से किसी चालीश प्रतिशत तो कुल एक सी दैत्याकार कम्पनियों के हाथों में !) और देश के शासन सत्ता उसके हाथ का खिलौना है।"[62] इस देश में धनी व्यक्ति ही "देश की अर्थनीति के संचालक और अधिनायक हैं।"[63] हर सरकार व्यवसायिक विकास के साथ प्रगति का वादा करती है किंतु यह सब एक मिथ्या बातें हैं और कुछ नहीं। क्योंकि "मजदूरों की मुक्ति की समस्या स्थानीय या राष्ट्रीय नहीं है बल्कि आधुनिक समाज वाले सभी देशों को इसने अपनी बाहों में समेट लिया है यह एक सामाजिक

समस्या है। "[64] निम्न वर्ग के लोगों की बस एक ही चिंता होती है की कैसे अपना और अपने परिवार का पेट पाल सके।

निम्नवर्गीय नारी दोहरी जिम्मेदारी को निभाती हैं घर के अपने सभी दायित्वों को निभाती हैं और बाहर जाकर मजदूरी करती है। वह कहीं भी पुरुषों के मुकाबले कम नहीं है, इसलिए देश विदेश में इस दिशा में बहुत प्रयास किए गए हैं "नारी के सशक्त होने से समाज में आत्म-विश्वास के साथ-साथ संतुलन कायम होता है। अब वे दिन चले गए जब नारी को पुरुष की तुलना में जीवन की सभी गतिविधियों में दूसरे दर्जे का माना जाता था। अब वह बात साबित हो चुकी है कि नारी कोई भी काम उसी कुशलता से कर सकती है जैसे एक पुरुष।"[65] हमारे समाज में लैंगिक असमानता एक गंभीर समस्या है। महिलाओं के साथ हमेशा भेद-भाव होता आया है, चाहे वह नारी किसी भी वर्ग की हो, उसका अपमान,शोषण घर समाज दोनों ही जगह पर होता है। निम्न वर्ग की नारी भी इससे दूरी नहीं बना सकी। आज भले ही कितनी बुलंदियों पर पहुँच चुकी हो, लेकिन आज भी यह भेद-भाव देखा जाता है निम्नवर्गीय नारी को पुरुषों के मुकाबले कम मजदूरी मिलती है उसे बराबरी की मजदूरी का हक प्राप्त नहीं। यह एक कटु सत्य है।

निम्नवर्गीय नारी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती है उसके बावजूद निम्नवर्गीय पुरुषों की मानसिकता में महिलाओं के प्रति कोई बदलाव देखने को नहीं मिलता। यहाँ भी नारी न्यायहीन है। अपने पतियों द्वारा प्रताड़ित एवं शोषित होती है, अक्सर मार-पीट की घटना सुनने को मिल जाती है। इस विषय पर चर्चा करते हुए रामदरश मिश्र ने लिखा है " नारी शोषण के दुहरे पाट में पिसती रही है शोषक वर्गों के घरों की नारिया भी शोषित हैं और शोषितों के यहा भी नारियां शोषितों से भी शोषित हैं। इसलिए नारी की समस्या प्रगतिशील मानवीय दृष्टि के लिए एक बहुत बड़ी समस्या है और सामाजिक समस्या का अपरिहार्य अंग।"[66]

निष्कर्ष:

भारतीय समाज वर्णों में विभक्त समाज होते हुए वर्गों में विभक्त समाज है। यह वर्गीय विभाजन पश्चात की देन है। जो पूर्णतया अर्थ पर आधारित व्यवस्था है। भारतीय समाज में यह आधुनिक काल मे प्रवेश पाता हैं और साहित्य में यह सबसे अधिक उपन्यास व कहानी विधा में समर्थित व सार्थकता प्राप्त करती है। यह वर्गीय चेतना हमें इनके साहित्य में भी दिखाई पड़ती है। इस रूप में इस अध्ययन का लेखन किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ.पारुकान्त देसाई - हिंदी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम सं. 2002 - पृ. 13-14
2. वही - पृ. 14
3. वही - पृ. 14
4. डॉ. रामचन्द्र तिवारी - हिंदी का गद्य साहित्य विश्वविद्यालय प्रकाशन, विशालाक्षी भवन, (भूगर्भ तल) चौक, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, सं. 2016 - पृ. 184
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास, पयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद, सं. 2017 - पृ 296
6. डॉ. रामचन्द्र तिवारी - हिंदी का गद्य साहित्य विश्वविद्यालय प्रकाशन, विशालाक्षी भवन, (भूगर्भ तल) चौक, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, सं. 2016 - पृ. 185
7. वही - पृ. 187
8. हेमन्त कुकरेती - हिंदी उपन्यास : नया पाठ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2015 - पृ. 11
9. डॉ. जागृति पंड्या (व्यास) सातवें दशक के उपन्यासों में समसामयिक चेतना पैराडाइज पब्लिशर, जयपुर - पृ. 47

10. वही - पृ. 50

11. वही - पृ. 55

12. शिवनारायण श्रीवास्तव - हिंदी उपन्यास, सरस्वती मंदिर प्रकाशन, वाराणसी, सं. 2007 - पृ. 55

13. बाबू गुलाब राय - काव्य के रूप, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली सं.1970 - पृ. 56

14. रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली पच्चीसवाँ सं. 2018 - पृ. 196

15. डॉ. जागृति पंड्या (व्यास) सातवें दशक के उपन्यासों में समसामयिक चेतना पैराडाइज पब्लिशर, जयपुर - पृ. 52

16. डॉ. रामचन्द्र तिवारी - हिंदी का गद्य साहित्य विश्वविद्यालय प्रकाशन, विशालाक्षी भवन, (भूगर्भ तल) चौक, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, सं. 2016 - पृ. 243-244

17. संतबख्श सिंह, नई कहानी: नये प्रश्न, सहित्यालोक प्रकाशन देवनगर, कानपुर - पृ. 15

18. डॉ. रामचन्द्र तिवारी - हिंदी का गद्य साहित्य विश्वविद्यालय प्रकाशन, विशालाक्षी भवन, (भूगर्भ तल) चौक, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, सं. 2016 - पृ. 367

19. प्रेमचंद्र, कुछ विचार, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्रथम सं. 1989, पृ. 369

20. वही - पृ. 369

21. जैनेंद्र कुमर, कहानी: अनुभव और शिल्प, पुर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. 1967 पृ. 371

22. राजेंद्र यादव – कहानी: स्वरूप और संवेदना, नेशनल प्रकाशन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, तीसरा सं. – 1988 पृ. 372

23. वही - पृ. 369

24. डॉ. रामचन्द्र तिवारी - हिंदी का गद्य साहित्य विश्वविद्यालय प्रकाशन, विशालाक्षी भवन, (भूगर्भ तल) चौक, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, सं. 2016 - पृ. 374
25. डॉ. रामचन्द्र तिवारी - हिंदी का गद्य साहित्य विश्वविद्यालय प्रकाशन, विशालाक्षी भवन, (भूगर्भ तल) चौक, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, सं. 2016 - पृ. 376
26. सं. राजेंद्र यादव – एक दुनिया समानांतर, अक्षय प्रकाशन, दिल्ली, तीसरा सं. 1974 - पृ. 377
27. आर.एम. मैकाइवर तथा सी.एच. पेज - सोसायटी , मैकमिलन कम्पनी लिमिटेड, लन्दन, संस्करण 1957 - पृ. 348
28. अशोक धुलधुले - आँचलिक उपन्यासों में वर्ण एवं वर्ग संघर्ष, चिन्तन प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2011 - पृ.66
29. डॉ.पी.एम.थॉमस - भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास , जवाहर पुस्कालय प्रकाशक, प्रथम संस्करण 1995 - पृ.33
30. अशोक धुलधुले - आँचलिक उपन्यासों में वर्ण एवं वर्ग संघर्ष, चिन्तन प्रकाशन,प्रथम संस्करण 2011 - पृ. 71
31. मंजुलता सिंह - हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग ,आर्य बुक डीपो प्रकाशक, संस्करण 2015 - पृ. 4
32. वही - पृ. 5
33. वही - पृ. 5
34. आर.एच.ग्रेटन - दि इंग्लिश मीडिल क्लास - जी वेल्स एण्ड संस लिमिटेड, लंदन - पृ. 19
35. डॉ. नासिर अहमद खान, मिडिल क्लासेज इन इण्डिया, परकाश शाखा, इनफार्मेशन डिपार्टमेंट, उत्तर प्रदेश, 1958 पृ. 15

36. मंजुलता सिंह - हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग ,आर्य बुक डीपो प्रकाशक, संस्करण 2015 - पृ. 7
37. हुमायुं कबिर - इण्डियन हैरिटेज, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई 1960 - पृ.114
38. वही - पृ. 104
39. के.सी.व्यास - दि सोशल रेनासां इन इण्डिया, वोरा एण्ड कंपनी प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई पृ. 46
40. मंजुलता सिंह - हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग ,आर्य बुक डीपो प्रकाशक, संस्करण 2015 - पृ. 14
41. हुमायुं कबिर - इण्डियन हैरिटेज, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई 1960 - पृ. 117
42. वही - पृ. 117
43. नन्ददुलारे वाजपेयी - राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध - इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम सं. 1962 पृ. 11
44. मंजुलता सिंह - हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग ,आर्य बुक डीपो प्रकाशक, संस्करण 2015 - पृ.16
45. वही - 18
46. रविन्द्र नाथ मुकर्जी - भारतीय समाज व संस्कृति - विवेक प्रकाशन, सं. 1983 - पृ. 481
47. एस. एल. दोषी, पी.सी. जैन - भारतीय समाज, पब्लिशर मलिक बुक कम्पनी एडिशन 6 सं. 2022 - पृ. 102
48. वही - पृ. 101
49. एस. एल. दोषी, पी.सी. जैन - भारतीय सामाजिक व्यवस्था - रावत पब्लिकेशन नई दिल्ली और जयपुर - पृ. 102
50. वही - पृ. 102

51. अमर्त्य सेन भारतीय अर्थतंत्र इतिहास और संस्कृति - राजपाल प्रकाशन - पृ.194
52. प्रो.एम.एल गुप्ता एवं डॉ.डी.डी शर्मा - समाजशास्त्र - साहित्य भवन, सं 2017 - पृ. 110
53. अमर्त्य सेन - भारतीय अर्थतंत्र इतिहास और संस्कृति - राजपाल प्रकाशन - पृ. 194
54. सुकोमल सेन - भारत का मजदूर वर्ग उद्भव और विकास - ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, सं 2012 पृ. 38
55. अमृतराय - आधुनिक भाव बोध की संज्ञा - हंस प्रकाशन इलाहाबाद सं. 1982 - पृ. 75
56. वही - पृ. 74
57. प्रो.एम.एल गुप्ता एवं डॉ.डी.डी शर्मा - समाजशास्त्र - साहित्य भवन, सं 2017 - पृ . 228
58. नई दुनिया - रायपुर, सोमवार, 15 जुलाई, 2013 पृ .11
59. सुकोमल सेन - भारत का मजदूर वर्ग उद्भव और विकास - ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, सं 2012 पृ. 53
60. 60. बी. शिवा राव - द इंडस्टियल वरकर्स इन इंडिया - जी. अलीन एण्ड अनविन लिमिटेड - पृ. 113,114
61. दिनकर केशव भाकरे - नवभारत रविवारीय अवकाश अंक, 14 जुलाई 2013 - पृ. 4
62. अमृतराय - आधुनिक भाव बोध की संज्ञा - हंस प्रकाशन इलाहाबाद सं. 1982 - पृ. 12,13
63. वही - पृ. 12,13
64. सुकोमल सेन - भारत का मजदूर वर्ग उद्भव और विकास - ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, सं 2012 - पृ. 26
65. विमला जलाल - भारत की अर्थ नीति 21वीं सदी की ओर - राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, पहला सं. 1998, आवृति 2008 - पृ. 22
66. डॉ.रामदरस मिश्र - हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा - राजकमल प्रकाशन, पहला सं. 1968 - पृ. 121